॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा प्रेरित

सत्संग शिक्षण श्रेणी का पाठ्यपुस्तक : 4

किशोर सत्संग प्रवेश

लेखक

साधु विवेकसागरदास

(वाचस्पति)

प्रकाशक

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004.

KISHORE SATSANG PRAVESH (Hindi Edition)

(Introduction to Swaminarayan Satsang beliefs, traditions and history)

By Sadhu Viveksagardas
Translated by Vimalshankar Shastri

A textbook for examination prescribed under the curriculum set by B.A.P.S. Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HH Pramukh Swami Maharaj

Presented by: B.A.P.S. SWAMINARAYAN SANSTHA
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu, Yamuna Kinara, New Delhi – 110 092. India.

Publishers: SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad – 380 004. India.

2nd Edition: December 2016. Copies: 3,000 (Total Copies: 6,000)

Warning: **Copyright:** © SWAMINARAYAN AKSHARPITH
All rights reserved. No part of this book may be used or re-produced in any form or by any means without permission in writing from the publisher, except for brief quotations embodied in reviews and articles.

ISBN: 978-81-7526-744-2

रजूकर्ता : बी.ए.पी.एस. स्वामिनारायण संस्था
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे, 24, अक्षरधाम सेतु, यमुना किनारा, नई दिल्ली – 110 092.

प्रेरणामूर्ति : ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित © स्वामिनारायण अक्षरपीठ
इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

द्वितीय संस्करण : दिसम्बर 2016

प्रति : 3,000 (कुल प्रतियाँ : 6,000)

मूल्य : ₹. 30.00 (स्वामिनारायण अक्षरपीठ के आर्थिक अनुदान से ₹. 45.00 में से रियायती मूल्य)

मुद्रक एवं प्रकाशक :
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद – 380 004

कृपाकथन

ब्रह्मस्वरूप स्वामीश्री योगीजी महाराज द्वारा स्थापित व पोषित युवक प्रवृत्ति तीव्र गति से विस्तृत होती जा रही है। इस प्रवृत्ति से जुड़े युवाओं की आकांक्षा तथा ज्ञानपिपासा को संतुष्ट करने तथा उन्हें भगवान श्रीस्वामिनारायण प्रबोधित अक्षरपुरुषोत्तम के सिद्धांत की ओर अभिमुख करने के उद्देश्य से बोचासणवासी श्रीअक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था ने अध्ययनक्रम निश्चित किया है, जिसकी क्रमबद्ध पुस्तकों के प्रकाशन की योजना स्वामिनारायण अक्षरपीठ ने बनाई है।

इन पुस्तकों द्वारा विद्यालय के स्तर पर सत्संग के बालकों तथा युवकों को व्यवस्थित ढंग से लगातार शुद्ध ज्ञान सरल भाषा में देने का विचार किया गया है। भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा स्थापित आदर्शों के पालन तथा प्रचार के लिए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा स्थापित यह संस्था, इस प्रवृत्ति द्वारा उन आदर्शों को, सम्प्रदाय की उन भव्य प्रणालियों को तथा उसके द्वारा महान हिन्दू धर्म की संस्कृति का प्रचार करेंगे।

भगवान श्रीस्वामिनारायण का दिव्य संदेश विश्व के कोने-कोने में प्रसारित हो, यही इस प्रकाशन का उद्देश्य है। भिन्न-भिन्न भाषाओं में इन पुस्तकों का प्रकाशन हो, उसके लिए एक योजना बनाई गई है। आशा है कि सम्प्रदाय के तथा सम्प्रदायेतर सभी धर्मप्रेमी मुमुक्षु, इस प्रवृत्ति का स्वागत करेंगे और उसमें तन-मन-धन से सम्पूर्ण सहयोग करेंगे।

बालकों तथा युवकों को प्रोत्साहित करने के लिए, इन पुस्तकों के आधार पर परीक्षा लेकर, उन्हें प्रमाणपत्र दिया जाएगा। इस पुस्तक को तैयार करने में पूज्य ईश्वरचरणदास स्वामी, रमेशभाई दवे तथा किशोरभाई दवे के अतिरिक्त जिन लोगों ने सहयोग प्रदान किया है, उन सभी को हार्दिक आशीर्वाद हैं।

वसंतपंचमी
संवत 2028
अटलादरा

शास्त्री नारायणस्वरूपदासजी
(प्रमुखस्वामी महाराज)
अत्यंत स्नेहपूर्वक जय श्रीस्वामिनारायण।

निवेदन

भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा प्रवर्तित वर्तमान-नियमों तथा उनके उपदेशों को सत्संगियों में प्रचलित करने के लिए, आज विशेष आवश्यकता है। इस प्रथा और आदेश का अनुसरण करने से ही सत्संगियों का सही अर्थ में जीवन-निर्माण होता है। वे कुसंग का त्याग करके आदर्श सत्संगी बन सकते हैं और जीवन का परम श्रेय सिद्ध कर सकते हैं।

शिक्षापत्री के सामान्य नियम, संध्या-आरती के पूर्व की जानेवाली सांध्य-वंदना, धुन, प्रार्थना, अष्टक, कीर्तन, सुभाषित, दृष्टांत, कथा, व्रतोत्सव, वचनामृत तथा स्वामी की बातों का निरूपण एवं श्रीजीमहाराज द्वारा वचनामृत में मान्य किए गए अन्य उत्तम संतों तथा हरिभक्तों के प्रेरणादायी चरित्र, इस पुस्तक में सरल भाषा में प्रस्तुत किए गए हैं। उपरोक्त साहित्य, सत्संगी पाठकों को बहुत सी जानकारियाँ तथा ज्ञान प्रदान करेंगी और सत्संग में अधिक रुचि उत्पन्न करेंगी।

सत्संग-शिक्षण परीक्षा के अध्ययन क्रम के एक भाग स्वरूप इस पुस्तक की रचना की गई है। द्वितीय परीक्षा 'सत्संग प्रवेश' के लिए यह पुस्तक आपके हाथ में रखते हुए हमें आनन्द है।

भगवान श्रीस्वामिनारायण तथा ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज एवं प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंत स्वामी महाराज को प्रसन्न करने के लिए सत्संगी बालक, युवक तथा जिज्ञासु, इस पाठ्यक्रम को तैयार करके, सत्संग शिक्षण परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें, यही प्रार्थना!

- सम्पादक मंडल

॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

हम तो हैं स्वामी के बालक, मरेंगे स्वामी के लिए ।
हम तो हैं श्रीजी के युवक, लड़ेंगे श्रीजी के लिए ।।

नहीं डरते नहीं करते, हमारी जान की परवाह ।
हमें है भय नहीं किससे, न हमको मौत की परवाह ।।

किया शुभ यज्ञ का आरंभ, हम बलिदान कर देंगे ।
हमारे अक्षरपुरुषोत्तम, गुणातीत गान गाएँगे ।।

हम तो हैं श्रीजी की संतान, स्थान है अक्षर में हमका ।
लगाई धर्मनिष्ठा की भभूत तो, भय हमें किसका? ।।

मिले हैं 'मोती' के स्वामी, उन्होंने बाँह ली थामी ।
प्रकट पुरुषोत्तम धामी, अक्षरब्रह्म गुणातीत स्वामी ।।

क्रमिका

1. शिक्षापत्री 1
2. सगराम 13
3. व्यापकानन्द स्वामी 15
4. गोडी 18
5. धुन 19
6. श्रीस्वामिनारायणाष्टकम् 19
7. प्रार्थना 21
8. रत्नाकर और चार भाई 23
9. नेनपुर के देवजी भगत 24
10. गुरु–शिष्य 26
11. आत्मानन्द स्वामी 29
12. बोचासण के काशीदास 32
13. प्रार्थना 36
14. भुज की लाधीबाई 36
15. दुबली भट्ट 39
16. व्रत और उत्सव 41
17. माताजी 56
18. राणा राजगर 59
19. वचनामृत 61
20. प्रभाशंकर और देवराम 63
21. सच्चिदानन्द स्वामी 65
22. सुभाषित 67
23. जालमसिंह बापू 69
24. अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की बातें 71
25. कीर्तन 79

किशोर सत्संग प्रवेश

1. शिक्षापत्री
(सामान्य नियम-विभाग 1)

मनुष्य और पशु में इतना ही अन्तर है कि मनुष्य के ऊपर धर्म की मर्यादाएँ हैं, परन्तु पशु के ऊपर नहीं। धर्म के अनुशासन के बिना मनुष्य का जीवन पशुजीवन ही है। श्रीहरि ने कहा है कि 'धर्म अर्थात् सदाचार।' हमारे धर्मशास्त्रों में आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित्त के विषय में बहुत सी बातें लिखी गई हैं। धर्म के महासागर को श्रीहरि ने 'शिक्षापत्री' रूपी गागर में भर दिया है, शिक्षापत्री केवल आचारसंहिता ही नहीं है; वह तो चारों पुरुषार्थ सिद्ध करने की मार्गदर्शिका भी है, श्रीहरि ने धर्म के बाँध को इस प्रकार विशेष मजबूत किया है।

'सर्व जीव हितकारी' शिक्षापत्री का हेतु और उसकी महिमा समझाते हुए, श्रीजीमहाराज कहते हैं कि 'संवत् 1882 की माघ शुक्ल पंचमी के दिन मैंने सभी सत्शास्त्रों का निष्कर्ष निकालकर, इस शिक्षापत्री को लिखी है। प्रेमपूर्वक इस शिक्षापत्री का अनुसरण करते हुए, निरन्तर सावधान होकर इसका पालन करें, इसका उल्लंघन न करें।'

'जो भक्त शिक्षापत्री के अनुसार जीवनव्यवहार करेगा, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों को निश्चितरूप से प्राप्त करेगा' श्रीहरि का यह वरदान है। उन्होंने यह भी कहा था कि 'यह जो हमारी वाणी है, वह हमारा ही स्वरूप है; ऐसा समझकर आदरपूर्वक उसे सबको अपनाना चाहिए।'

इसलिए शिक्षापत्री का नित्य प्रति पाठ करें। पढ़ना न आता हो, तो उसका श्रवण करें; अन्यथा पूजा करने के लिए श्रीहरि ने आज्ञा दी है। जिस दिन उन तीनों में से एक भी आज्ञा का पालन न हो, तो श्रीहरि ने एक उपवास करने के लिए कहा है। (वचनामृत गढडा अंत्य प्रकरण-1)

वाणी, विचार तथा वर्तन का सुमेल शिक्षापत्री के पालन से ही सिद्ध होता है। शिक्षापत्री के नियम केवल शौच अथवा सदाचार के स्थूल नियम नहीं है, बल्कि श्रीजीमहाराज की प्रसन्नता के लिए उनकी आज्ञा से पालन करने के दिव्य नियम हैं। उसका ठीक से पालन करने से मोक्ष होता है। ये

नियम, अनुशासन के बिना नहीं पाले जा सकते। इसीलिए प्रकट सत्पुरुष का आश्रय लेने से श्रीजीमहाराज की आज्ञापालन का बल मिलता है।

पूर्व के संस्कार-बल से मुमुक्षु पृथ्वी पर विचरण कर रहे भगवान के परम एकान्तिक सन्त अथवा गुरु के सम्पर्क में आता है। वह मुमुक्षु पंच वर्तमान का पालन करने की दृढ़ता रखता है। उस समय गुरु उसे दीक्षा-मंत्र *'काल-माया-पाप-कर्म-यमदूत-भयादहम्। स्वामिनारायण-शरणं प्रपन्नोऽस्मि स पातु माम्॥'* देता है। उसे निष्पाप बनाकर श्रीहरि की शरण में रख लेते हैं और सत्संगी बनाते हैं। उसे अक्षर तथा पुरुषोत्तम के प्रतीक समान तुलसी की दो लड़ीवाली कण्ठी गले में पहनाते हैं। सत्संगी को वह कण्ठी आजीवन पहननी होती है। (41)[1] तभी भगवान उसकी अखंड रक्षा के लिए प्रतिबद्ध रहते हैं।

नित्यकर्म

शिक्षापत्री की आज्ञानुसार अब सत्संगी का नित्यकर्म देखिए। (49 से 54 तथा 61 से 64)

भगवान श्रीस्वामिनारायण के त्यागी और गृहस्थ, सभी आश्रितों को सूर्योदय के पहले सदैव उठना है और भगवान का ध्यान करना है। विलम्ब से उठने से पुण्य का क्षय होता है। प्रात:काल उठ जाने से शारीरिक स्फूर्ति एवं मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। ब्राह्ममुहूर्त में उठने से अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं तथा सात्त्विक वातावरण में भगवान का ध्यान, भजन और स्मरण करने से अद्‌भुत आनन्द प्राप्त होता है। आज के युग में लोगों की देर से उठने की आदत पड़ती जा रही है, जो अच्छी बात नहीं है। सत्संगियों को सूर्योदय के पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिए।

शौचविधि के बाद बाँया हाथ दस बार और दोनों हाथ एक साथ मिलाकर सात बार शुद्ध मिट्टी अथवा साबुन से धोना चाहिए। अब तो साबुन से भी हाथ धोकर साफ़ किया जाता है।

तत्पश्चात् एक स्थान पर बैठकर दातुन करें, जिससे कि चारों और गंदगी न फैले। यदि दातुन कर रहे हों, तो दातुन की फांकें धोकर उसे कूड़ेदान में रखे; क्योंकि जीभ का मैल विषैला होता है, उस पर बैठनेवाले

1. शिक्षापत्री के श्लोक के क्रमांक इस प्रकार से कोष्ठक में रखे गए हैं।

जीव-जन्तु मर जाते हैं।

शास्त्रों में प्रात:स्नान की अत्यधिक महिमा कही गई है। प्रात:काल जब तक स्नान नहीं किया जाता, तब तक व्यक्ति अपवित्र अर्थात् सूतकी माना जाता है, स्नान के बाद ही व्यक्ति पूजन का अधिकारी बनता है। हमें सदैव छाने हुए जल से ही स्नान करना चाहिए। नदी, तालाब तथा सरोवरों में स्नान करना श्रेष्ठ माना गया है। शीतल जल से स्नान करने से विशेष स्फूर्ति तथा चेतना का संचार होता है। स्नान के बाद धोया हुआ वस्त्र पहनना चाहिए तथा एक उपवस्त्र ओढ़ना चाहिए। बिना उपवस्त्र ओढ़े पूजन करना निषिद्ध है। ऐसे व्यक्ति को नग्न ही समझा जाता है।

भगवान की सेवा-पूजा के लिए एक बड़ा सा आसन धरती पर बिछाकर, उस पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठना चाहिए। शास्त्रों में पूर्व दिशा को देवदिशा कहा गया है। पश्चिम और दक्षिण दिशा पूजा के लिए निषिद्ध मानी गई हैं। दर्भ-निर्मित, ऊनी अथवा मृगचर्म का आसन श्रेष्ठ माना गया है। पूजा में अन्य प्रकार के आसन के उपयोग से फलसिद्धि नहीं होती।

सत्संगियों को पूजा के समय ललाट पर चन्दन का ऊर्ध्वपुंड्र-तिलक करके, मध्य में कुमकुम का गोल टीका लगाना चाहिए। विद्यार्थी हो अथवा नौकरी-व्यवसाय करनेवाले सत्संगी, सभी को तिलक अवश्य करना चाहिए। ललाट पर तिलक होने से श्रीहरि तथा महान संत, कुसंग से हमारी रक्षा करते हैं। तिलक के कारण श्रीहरि की आज्ञा-विरुद्ध अनुचित कार्य करते हुए हमें संकोच होता है। तिलक न करने से हमारा मन शिथिल पड़ जाता है और अनुचित आचरण के लिए लालच पैदा होती है।

हमें तिलक को धर्म का प्रतीक मानना चाहिए तथा उसे धारण करने में लाज, शर्म या हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिए। पाठशाला अथवा कॉलेज जानेवाले छात्रों को बचपन से ही तिलक-टीका लगाने का स्वभाव बन गया, तो उनके हृदय में अलौकिक-नैतिक साहस आ जाएगा। उनकी आध्यात्मिक ताकत भी बढ़ेगी। श्रीहरि की इस आज्ञा का शूरवीर होकर पालन करना जरुरी है।

सधवा स्त्रियाँ केवल टीका करें। विधवा स्त्रियाँ न तो तिलक अथवा न टीका धारण करें। तिलक तथा टीका भगवान की पूजा में से बचे हुए प्रसादी

के चंदन तथा कुमकुम से करें।[2] तिलक तथा टीका सुंदर तथा सौम्य होना चाहिए।

उसके बाद मानसी पूजा करनी चाहिए। मानसी पूजा के पूर्व मन को स्थिर करके आत्मविचार करें, प्रकट गुणातीत सत्पुरुष को अपनी आत्मा मानकर हृदय में श्रीहरि को धारण करें। उसी प्रकार से प्रकट सत्पुरुष की स्मृति के साथ पाँच समय की मानसी पूजा करनी चाहिए। जो इस प्रकार है : (1) प्रातः मानसी में भगवान को जगाना, (2) प्रातः भावपूर्वक नैवेद्य रखें। (3) दोपहर में प्रेम से जगाएँ, (4) संध्या समय में आरती के पश्चात् तथा (5) रात्रि में सोने से पूर्व स्मरण के साथ उनकी स्तुति करें। मानसी पूजा मन से ही कल्पित उत्तम पदार्थों द्वारा गद्‌गदभाव से की जानी चाहिए। (वचनामृत गढडा अंत्य प्रकरण–23)

तत्पश्चात् गुरु के द्वारा पूजने के लिए दिया गया भगवान का स्वरूप – अक्षरपुरुषोत्तम महाराज तथा गुरु परम्परा (भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज, योगीजी महाराज, प्रमुखस्वामी महाराज, महंतस्वामी महाराज) की मूर्तियाँ रखें, उनकी सेवा करें और पूजा करें। (62) सबसे पहले आह्‌वान मंत्र से भगवान का आह्‌वान करके 'स्वामिनारायण' महामंत्र की माला फेरनी चाहिए। बाद में भगवान की महिमा का स्तोत्रगान करें, पाँच प्रदक्षिणा एवं पाँच साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करें तथा वचनामृत में दी गई श्रीहरि की आज्ञा के अनुसार किसी के भी मन, कर्म, वचन से हुए अपराध को क्षमा कर देने के लिए छठा दण्डवत् प्रणाम भी करें। (वचनामृत गढडा मध्य प्रकरण–40) दंडवत् प्रणाम के समय मस्तक, भृकुटि, नासिका, वक्षःस्थल, जंघा, घुटने, हाथ की तालियाँ और पैरों की उंगलियों – इन आठ अंगों का पृथ्वी पर स्पर्श होता है, इसीलिए इसको साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कहते हैं। साष्टांग दंडवत् सर्वोत्तम प्रकार का प्रणाम है। तत्पश्चात् नैवेद्य अर्पण करें। अंत में अपने सभी अपराधों के लिए क्षमा माँगकर भगवान से प्रार्थना करें, विसर्जन मंत्र बोलकर पूजाविधि की समाप्ति करनी चाहिए।

---

2. तिलक श्रीजीमहाराज के चरणारविंद का प्रतीक है और टीका अक्षरब्रह्म का प्रतीक है। अनादि मूल अक्षरब्रह्म जिसे कहते हैं वह गुणातीतानंद स्वामी श्रीहरि के चरणारविंद में रहते हैं। अर्थात् भक्त सहित भगवान की उपासना का तिलक–टीका प्रतीक है।

इस पूजा विधि के बाद श्रीहरि द्वारा 'वचनामृत' में दी गई आज्ञानुसार 'शिक्षापत्री' का पाठ उच्च स्वर में करना चाहिए। (वचनामृत गढडा अंत्य प्रकरण-1)। वृद्धावस्था या किसी अन्य आपत्ति के कारण यदि असमर्थ हो जाएँ, तो अपनी नित्यपूजा किसी अन्य भक्त को देकर, अपने सामर्थ्य के अनुसार उसका पालन करें। (61)

सभी सत्संगियों को हमेशा संध्या के समय मन्दिर जाकर[3] भगवान के नाम का उच्च स्वर से कीर्तन करना चाहिए तथा उत्सव के दिन मंदिर में वाद्ययंत्रों सहित भगवान का कीर्तन करना चाहिए। सायंकाल के समय असुर-शक्ति का विशेष बल होता है, इसलिए व्यावहारिक कार्यों के लिए वह समय निषिद्ध माना गया है। संध्या-आरती में श्रीहरि, अक्षरब्रह्म एवं अनन्त मुक्तों के साथ पधारते हैं। अत: इस आरती में अनिवार्य रूप से उपस्थित रहना चाहिए। (63-64)

इसके अतिरिक्त गुरु अथवा देवदर्शन के लिए जब भी जाएँ, उस समय खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। अपनी सामर्थ्य के अनुसार धन-धान्य तथा फल-फूल लेकर जाएँ। (37)

उसके पश्चात् मंदिर में जाकर भगवान की कथावार्ता सुनें, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा में लिखे गए ग्रन्थों का अपनी बुद्धि के अनुसार अध्ययन करें तथा श्रीहरि की स्वाभाविक चेष्टा अर्थात् ध्यानचिन्तामणि और लीला-चिन्तामणि के पदों को बोलकर, मानसी में भगवान को शयन कराएँ। जो भक्त स्वाभाविक चेष्टा के पद बोलते हैं, उन्हें चार वेद, छ: शास्त्र तथा अठारह पुराण आदि ग्रंथों के श्रवण से जितना फल प्राप्त होता है, उतना फल उन्हें चेष्टा-गान से प्राप्त हो जाता है। भगवान की लीला तथा मूर्ति का चिन्तन करने से भगवान में वृत्ति जुड़ जाती है अर्थात् स्थिर हो जाती है। समग्र दिवस के दौरान की गई व्यावहारिक प्रवृत्ति में कर्मों से निवृत्ति हो जाती है और सुषुप्तावस्था में भी भगवान का स्मरण बना रहता है। अत: प्रत्येक सत्संगी को नियम-चेष्टा के पद बोलकर ही शयन करने का नियम रखना चाहिए।

अब इस नित्यक्रम के पश्चात् 'शिक्षापत्री' में आचारशुद्धि के विषय में जो कुछ कहा गया है, उस पर विचार कीजिए।

---

3. गाँव में मंदिर न हो, तो घर मंदिर में आरती-नाम-संकीर्तन करें।

अहिंसा

'अहिंसा परमो धर्मः।' ऐसा सभी शास्त्रों में कहा गया है। किसी भी जीव-प्राणीमात्र की हिंसा न करें। जान-बूझकर तो जूँ, खटमल, पिस्सू आदि जीवों की भी हिंसा कभी नहीं करनी चाहिए। देवता एवं पितृ के यज्ञ के लिए भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। यज्ञ में पशुओं का होम करना बहुत बड़ा पाप है। जगन्नाथपुरी में श्रीहरि ने यह कहकर कि चौलाई की भाजी में भी जीव है; उसे तोड़ने के लिए इन्कार कर दिया था। इसके अतिरिक्त स्त्री, धन तथा राज्य की प्राप्ति के लिए भी किसी मनुष्य की हिंसा किसी भी प्रकार से कभी न करें। (11, 12, 13) उपरिचर वसु, समग्र पृथ्वी का राजा था; फिर भी वह अहिंसा-परायण था। श्रीहरि ने वचनामृत में कहा है कि अहिंसायुक्त आचार-व्यवहार करना, ऐसा धर्म मोक्षपरायण है। (वचनामृत गढडा प्रथम प्रकरण-69)

दूसरे के मन में दुःख उत्पन्न हो, ऐसी वाणी बोलना भी एक प्रकार की हिंसा है।

सत्य

भक्त को हमेशा सत्य, प्रिय और हितकर वाणी बोलनी चाहिए। असत्य की शरण कभी नहीं लेनी चाहिए। कितना भी आर्थिक अथवा सामाजिक लाभ होता हो, परन्तु असत्य बोलना पाप है। श्रीहरि कहते हैं कि यदि अपना या किसी का द्रोह होता हो, तो सत्य का आग्रह छोड़ देना चाहिए। जैसे कोई कसाई कत्ल करने के इरादे से किसी गाय को पकड़ने के लिए उसके पीछे पड़ा हो, उस समय यदि वह गाय के विषय में पूछे, तो भी हमें कसाई को सही बात नहीं बतानी चाहिए। ऐसा झूठ यद्यपि पाप है, फिर भी गाय की प्राण-रक्षा के लिए यह 'झूठ' सबसे बड़ा पुण्य है! (26)

नैतिक आचरण

धर्म अर्थात् सदाचार। अत्यधिक फल मिलता हो, फिर भी धर्मरहित कार्य न करें; क्योंकि धर्म ही हर प्रकार का पुरुषार्थ प्रदान करता है। स्त्री, धन आदि पदार्थों के लोभ में धर्म का त्याग न करें। प्राचीनकाल में हुए महान पुरुषों ने कभी अधर्म का आचरण कदाचित् किया भी हो, तो भी उनका अनुसरण न करें। यदि उन्होंने धर्म का आचरण किया हो, तभी उनका

अनुसरण करें। (73, 74)

इस नियम के द्वारा भगवान श्रीस्वामिनारायण ने नीति के मार्ग में बहुत अच्छा उपदेश दिया है। प्रत्येक कर्म धर्मयुक्त ही करें। अधर्ममय जीवन – आहार, विहार, अथवा विचार; चाहे जैसे भी हों, ऐसे फल की लालच में जीवन कभी न व्यतीत करें; क्योंकि सभी पुरुषार्थ धर्म से ही प्राप्त होते हैं।

धर्म के लिए भी कभी चोरी का कार्य न करें; यही श्रीहरि की आज्ञा है। यहाँ पर मंदिर, देव अथवा साधु-संतों की सेवा के लिए भी चोरी अथवा अधर्म का आश्रय लेने के लिए स्पष्ट रूप से मना किया गया है। सत्संगी के लिए तो समग्र रूप से नीतिमय और सदाचारी बनना आवश्यक है।

आत्महत्या

प्राचीनकाल में मनुष्य स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए तीर्थस्थानों में जाकर आत्महत्या करता था; परन्तु वह भी एक प्रकार की हिंसा है, उसे नहीं करनी चाहिए। किसी भी प्रकार से आत्महत्या न करें, तीर्थ में भी नहीं। क्रोध के वशीभूत होकर यदि किसी प्रकार का अनुचित आचरण हो जाए, तो उससे घबड़ाकर आत्महत्या न करें। इसके अतिरिक्त यदि कभी स्वयं से अथवा किसी दूसरे से अनुचित आचरण हो गया हो, तो क्रोध के वशीभूत होकर कभी भी आत्महत्या न करें। इसके अतिरिक्त क्रोधावस्था में किसी शस्त्र से अपना अथवा किसी दूसरे का अंग-भंग न करें। (14, 16)

वेद में कहा है कि सभी प्रकार से आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। केवल मनुष्य-शरीर के द्वारा ही मोक्ष की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। ऐसा मानव-शरीर हमें साढ़े तीन करोड़ प्राकृत प्रलय के बाद भगवान की भक्ति के उद्देश्य को लेकर मिलता है। ऐसे दुर्लभ मनुष्य-शरीर को आत्मघात करके गँवाना नहीं चाहिए।

मांसाहार का निषेध

मांसाहार के लिए जीव-हिंसा करनी पड़ती है। हिंसा सबसे बड़ा पाप है। भगवान श्रीस्वामिनारायण ने इसीलिए तो अहिंसक यज्ञों का प्रचलन किया था। हिंसक यज्ञों के बाद प्रसादी के रूप में मिलनेवाले मांस को भी नहीं खाना चाहिए। ऐसा करने में चाहे कैसी भी आपत्ति क्यों न आए, परन्तु अपने निश्चय पर अडिग रहना चाहिए। जिस देवमूर्ति के समक्ष मद्य-मांस

का नैवेद्य अर्पित किया जाता हो और जहाँ बकरा आदि जीवों की हिंसा होती हो, उस देवता का नैवेद्य कभी न ग्रहण करें। अनाज को भी बिना साफ़ किए तथा आटे को बिना छाने उपयोग में नहीं लेना चाहिए; क्योंकि उसमें अनेक सूक्ष्म जन्तुओं के रहने की संभावना होती है। बिना छाने पानी, दूध, घी, तेल आदि पदार्थों का उपयोग कभी नहीं करना चाहिए। बिना छाने वह मद्य-मांस के समान ही है। जिस जल में सूक्ष्म जंतु हों, ऐसे जल से स्नान करना भी निषिद्ध है। (15, 22, 30)

मछुआरे को छः महीने तक मछली मारने से जितना पाप लगता है, उतना पाप एक दिन भी बिना छाने हुए पानी पीनेवाले को लगता है। महाभारत में भी कहा गया है कि 'एक व्यक्ति प्रतिमास एक अश्वमेध यज्ञ करे और एक व्यक्ति मद्य-मांस का त्याग करे, तो दोनों समान पुण्य के अधिकारी हैं।'

मद्य-निषेध

मद्य शब्द का प्रयोग दारू अथवा शराब के लिए किया जाता है। यह एक तमोगुणी पेय है। तीन प्रकार की सुरा और ग्यारह प्रकार की शराब, यदि उसे देवता को भी नैवेद्य दिया गया हो, तो भी कभी न पीयें। शराब कई प्रकार की होती है, उसकी गन्ध तथा स्पर्श को भी निषिद्ध कहा गया है। शास्त्रों में कहा है कि शराब की एक बूँद भी किसी जूते पर पड़ जाए, तो वह जूता जिस पशु के चमड़े का बना होगा, वह पशु भी यमलोक में जाता है। मनुस्मृति में मद्यपान को पाँच महापापों में स्थान दिया गया है। औषध भी यदि मद्य अथवा माँस से युक्त हो, तो उसका उपयोग नहीं करना चाहिए। जिस वैद्य अथवा डॉक्टर के आचरण को हम नहीं जानते, उसकी दी हुई औषधियों का सेवन हमें नहीं करना चाहिए। (15, 31)

आजकल लोग मांसाहार तथा मद्यपान को तथाकथित स्टेटस सिम्बोल मानने लगे हैं। व्यावसायिक, आर्थिक, एवं सामाजिक लाभ अथवा प्रतिष्ठा के लिए इसका सेवन 'अनिवार्य' कहने की प्रथा चल पड़ी है। परन्तु यह घोर पाप है, जिसे कभी माफ़ नहीं किया जा सकता। सत्संगियों को तो किसी भी हालत में मांसाहार और मदिरापान नहीं करना चाहिए। विशेष शिक्षा के लिए, व्यापार के लिए अथवा किसी और प्रयोजनवश विदेश

जानेवाले सत्संगियों को, इस नियम का निष्ठापूर्वक पालन करना चाहिए। विदेशों में भी बिना मांसाहार तथा मद्यपान के पूर्ण शाकाहारी तथा निर्व्यसनी बनकर रहा जा सकता है, ऐसा बहुतों का अनुभव है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए कुसंग में पड़कर तथा लोभ-लालच में फँसकर, इस नियम का भंग करने से व्यक्ति की अधोगति होती है। अत: श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए इस नियम का पालन करना महत्त्वपूर्ण है।

चोरी

धार्मिक कार्य करने के लिए भी चोरी करना उचित नहीं है। जो लोग चोरी से धन प्राप्त करके दान-पुण्य करते हैं, वे नरक के अधिकारी होते हैं। उस दान का पुण्य तो उसी को मिलता है, जिसका वह धन है। किसी के अधीनस्थ काष्ठ, पुष्प आदि सामान्य पदार्थ भी उसके मालिक की अनुमति लिए बिना ले जाएँ, तो वह भी एक प्रकार की चोरी ही है। जानबूझकर चोरी का माल रखना, किसी की चीज़ माँगकर लाना और उसे वापस न लौटाना, यह भी चोरी का ही एक प्रकार है। किसी के अधीन जो स्थान हो, वहाँ पर मालिक से पूछे बिना निवास नहीं करना चाहिए। इसलिए किसी भी प्रकार से चोरी नहीं करनी चाहिए।

व्यसन

बीड़ी, तम्बाकू, शराब, भाँग, अफीम, मॉरफिन, चरस तथा मेरिजुआना एवं गांजा आदि नशीली वस्तुएँ न तो खाएँ, न ही पीयें और सूंघे भी नहीं। कोई भी नशीला पदार्थ शरीर तथा मन को बुरी तरह से उत्तेजित करता है। वह मनुष्य को अपना गुलाम बना देता है। गुणातीतानन्द स्वामी ने कहा है, 'कुसंगी के फैल में सत्संगी का गुजारा' अर्थात् व्यसनी व्यक्ति व्यसन में जितना खर्च करता है, उससे तो सत्संगी व्यक्ति का जीवननिर्वाह हो जाता है।

जुआ न खेलें। भले ही वह ताश, रेस, सट्टे या आँकड़ों का खेल ही क्यों न हो; ये सभी बहुत बड़े व्यसन हैं। जुए के व्यसन से ही युधिष्ठिर ने सारा राज्य खो दिया था। यह व्यसन तृष्णा को बढ़ाता है और मनुष्य को तबाह कर देता है। अन्याय या पाप से कमाए हुए धन से कोई भी सुखी नहीं हो सकता। इसलिए इन व्यसनों से बचकर चलना चाहिए और कदाचित् इसे अपनाने में विवश हो जाएँ, तो संत-सत्संग से उससे छुटकारा

मिल सकता है।

इसके अतिरिक्त स्वाँग, नाटक, सिनेमा आदि का व्यसन भी न करें।

व्यभिचार से बचें

व्यभिचार न करें। व्यभिचार का तात्पर्य यह है कि परस्त्री के साथ मन, वचन, कर्म से दुर्व्यवहार न करें। मन में विकार लेकर परस्त्री की ओर दृष्टि भी नहीं डालनी चाहिए। ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा सद्‌गुण है, उससे भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं। आज के युग में जब कि स्त्री-पुरुष आपस में मुक्त होकर मिलते-जुलते हैं और किसी बंधन को नहीं मानते, उससे कई प्रकार की विकृतियाँ पैदा होती हैं। स्वाभाविक रूप से इस मर्यादा को लांघनेवाले का अध:पतन होता है। अत: इस नियम का निष्ठापूर्वक पालन करना आवश्यक है। सत्संगी को परस्त्री की ओर गलत दृष्टि से देखना भी नहीं चाहिए और धर्ममर्यादा का पालन करना चाहिए। (18)

आहार विवेक

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने आहार-विवेक पर अत्यधिक भार दिया है। आहार-विवेक को नहीं अपनानेवाले लोगों के समक्ष अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक कठिनाइयाँ आती हैं। इसीलिए शास्त्रों ने जिन खाद्य पदार्थों का निषेध किया है, उसे भगवान को नैवेद्य अर्पण करके, प्रसादी के रूप में भी कभी ग्रहण न करें।

बाज़ार में, दूकानों में और हॉटेलों में बिकनेवाले खाद्य पदार्थों में उपयोग में लाए गए घी, दूध, तेल, पानी आदि चीज़ें अशुद्ध होती हैं तथा उनमें कई प्रकार की मिलावटें भी होती हैं, इसीलिए वे पदार्थ खाने-पीने योग्य नहीं होते। प्याज और लहसुन तो अभक्ष्य पदार्थ ही है, क्योंकि उनसे तमोगुण बढ़ता है। शास्त्रों में कहा गया है कि 'आहारशुद्धि से सत्त्वशुद्धि होती है और सत्त्वशुद्धि से ब्रह्म का दर्शन होता है।' इस प्रकार आहारशुद्धि का बड़ा माहात्म्य है। (19) जहाँ कहीं और जैसा-तैसा खाने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और भ्रष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति अच्छा सत्संगी नहीं बन सकता।

स्वधर्म

प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म अर्थात् शास्त्र कथित नियमों तथा सदाचार का यथार्थ रूप से पालन करना चाहिए। अपने नियमों का त्याग न

करें। परधर्म,[4] पाखण्डधर्म[5] तथा उसके साथ ही कल्पितधर्म[6] का आचरण न करें। त्यागी अपने आश्रमधर्म का त्याग करके, गृहस्थाश्रम के नियमानुसार व्यवहार करने लगे, तो वह भी परधर्माचरण कहा जाएगा। गीता में भी कहा गया है कि अपने धर्म में ही दृढ़ निष्ठा रखें।

सभी की रक्षा करनेवाली जो धार्मिक मर्यादा है, उसका खंडन करना भी पाखण्ड है। इसीलिए वेदविरुद्ध धर्म अथवा नास्तिक का कल्पितधर्म या कल्पित सम्प्रदाय अथवा उसके गुरु, जिन्हें कोई वैदिक उपासना अथवा धर्म की मर्यादा मान्य नहीं; उसका आचरण अथवा अनुसरण न करें।

स्वच्छता विवेक

शतानन्द मुनि सत्संगिजीवन ग्रंथ में कहते हैं कि 'दूसरों के घर के आँगन, राजनैतिक स्थानों, पुलिस-स्थलों आदि के स्थानों में मल-मूत्र का त्याग कभी न करें। यहाँ-वहाँ थूके नहीं। गोशाला, जीर्ण देवालय, जलाशय, रास्ते, बोये हुए खेत, वृक्ष की छाया, फुलवारी, बगीचे, भस्म, बिल-बाँबी आदि स्थानों पर मल-मूत्र का त्याग करना अथवा थूकना धर्मशास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध है।' (32)

वस्त्रपरिधान में विवेक

जिन वस्त्रों के पहनने पर अपने अंग-उपांग दिखाई दें, ऐसे बीभत्स एवं छोटे माप के वस्त्र नहीं पहनने चाहिए। मन को उत्तेजित एवं कलुषित करनेवाली पश्चिमी सभ्यता की परिधान शैली का अन्धानुकरण हमें नहीं करना चाहिए। (38)

नैमित्तिक कर्म

ग्रहण-स्नान, जन्म-मरण का शौच आदि नैमित्तिक कर्म हैं। वे दैनिक कर्म नहीं हैं, उनके नियमों का भी पालन करना आवश्यक है।

ग्रहण

सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के समय अपनी सारी क्रियाओं का त्याग करके,

---

4. गृहस्थ लोग त्यागी जैसा आचरण करें, त्यागी यदि गृहस्थ जैसा आचरण करे, तो वह परधर्म है। (शिक्षापत्री अर्थदीपिका)
5. जिसमें धार्मिक मर्यादा का खंडन हो, वह वेदविरुद्ध धर्म पाखण्डधर्म है। (शिक्षापत्री अर्थदीपिका)
6. मनमाना स्वैच्छिकधर्म, कल्पितधर्म है। (शिक्षापत्री अर्थदीपिका)

पवित्र होकर भगवान के मंत्र का जाप करना चाहिए। उस समय भजन के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यावहारिक कार्य न करें। वस्त्र आदि किसी वस्तु का स्पर्श न करें, ग्रहण का वेध प्रारम्भ होने के पूर्व यदि भोजन तैयार किया गया हो, तो उसे त्याग दें। अचार, दूध, छाछ, तेल आदि में तिल अथवा दर्भ (दूब) डाल देने से उन वस्तुओं पर ग्रहण का प्रभाव नहीं लगता।

सूर्यग्रहण में ग्रहण के पूर्व चार प्रहर में तथा चन्द्रग्रहण के समय ग्रहण के पूर्व तीन प्रहर के अंदर भोजन करना निषिद्ध है। ग्रहण के छूटने पर वस्त्र सहित स्नान करके, गृहस्थों को यथाशक्ति दान करना चाहिए और त्यागियों को भगवान की पूजा करनी चाहिए। (86, 87)

आपद्धर्म

शास्त्रों द्वारा कहा गया आपद्धर्म थोड़ी सी कठिनाई पड़ने पर उसे कभी न ग्रहण करें। (48) आपद्धर्म का तात्पर्य दु:ख के समय पालन किया जानेवाला धर्म। अत्यन्त ही बीमार मनुष्य को व्रत के दिन पथ्य ग्रहण करने के लिए शास्त्रों की आज्ञा है, परन्तु उस आज्ञा के आधार पर सामान्य सी बीमारी में भोजन न ग्रहण करें। महाभारत में कहा गया है, 'शरीर के नाश होने का समय आया हो, तभी आपद्-धर्म का पालन करें। उसके पश्चात् शरीर और देशकाल अच्छा हो जाए, तो पूर्व की भाँति आचरण करें।'

छान्दोग्य उपनिषद् में उपस्ति ऋषि की एक कथा है। उन्हें कई दिनों तक भोजन नहीं मिला था। उनकी मृत्यु समीप आ चुकी थी। अंतत: वे एक महावत के पास गए। वह सड़ा हुआ उड़द उबालकर खा रहा था। शरीर के निर्वाह के लिए उपस्ति ने थोड़े से जूठे उड़द खा लिए। उसके पश्चात् महावत ने उन्हें जूठा पानी दिया। उपस्ति ने उसे लेने से इनकार करते हुए कहा, 'मेरा शरीर उड़द खाने से टिक सकता है, अब मैं जूठा पानी नहीं पी सकता।' इसे आपद्धर्म कहते हैं।

वर्तमान समय में धर्म में जो शिथिलता आ गई है, उसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य थोड़ी सी आपत्ति आने पर, उसे बड़ी आपत्ति मानकर बहुत सी छूट ले लिया करता है।

प्रायश्चित्त

भगवान श्रीस्वामिनारायण द्वारा प्रबोधित सदाचार के भिन्न-भिन्न

स्वरूपों को हमने देखा। इतना होने पर भी कभी जाने-अनजाने में इन सदाचार के नियमों का लोप हो गया हो और छोटा-मोटा पाप हो गया हो, तो अपनी शक्ति के अनुसार पाप का प्रायश्चित्त करें। श्रीहरि को अखण्ड रूप से धारण किए गए प्रकट सत्पुरुष जो कहें, वही धर्म कहा जाता है। वह जो निर्णय करें, उसके अनुसार प्रायश्चित्त करने से भी पाप शुद्धि हो जाती है। प्रायश्चित्त श्रद्धा और विश्वासपूर्वक किया जाना चाहिए। प्रायश्चित्त करने के पश्चात् भक्त पूर्ववत् शुद्ध हो जाता है; ऐसे भक्त को कभी पापी नहीं समझना चाहिए। (92)

2. सगराम

गुजरात में सन् 1869 में भयंकर अकाल पड़ा था। न तो अमीरों के घर में अन्न था, न ही व्यापारियों की दुकानों में अनाज बचा था। ऐसे समय में गरीबों की तो बात ही क्या? दाने-दाने के लिए विवश सगराम बाघरी अकाल से मुक्ति पाने के लिए, अपनी पत्नी के साथ गाँव से निकल पड़ा। मन में वह सोच रहा था कि मुक्तानन्द स्वामी की शरण में जाऊँ।

अचानक मार्ग में उसका पैर किसी पदार्थ के साथ टकराया और देखा तो एक सेर वजन का चाँदी का तोड़ा मार्ग में पड़ा हुआ था! सत्संग के रंग में डूबे हुए सगराम के मन में किसी पराये का तोड़ा ले लेने का विचार तक नहीं उत्पन्न हुआ! परन्तु, वह सोचने लगा कि समय खराब है, कहीं उसकी पत्नी का मन लोभ में न आ जाए; इसलिए उसने तोड़े पर अपने पैर से मिट्टी डाल दी।

उसके पीछे थोड़ी दूर पर आ रही उसकी पत्नी श्रीहरि का स्मरण कर रही थी। उसने दूर से ही सगराम को कुछ करते हुए देखा। निकट आने पर उसने उक्त विषय में सगराम से पूछा। सगराम ने अपने मन में जो कुछ भी था, उसे कह दिया। वह सुनकर उसकी पत्नी ने कहा, 'अरे! आपने तो धूल पर धूल डाल दी है। दूसरे की वस्तु को मैं धूल ही समझती हूँ।'

पत्नी का उत्तर सुनकर सगराम का चेहरा फीका पड़ गया, परन्तु अंदर ही अंदर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

थोड़ी दूर और आगे जाने के बाद कुछ लोग सामने से आ रहे थे। सगराम को किसी हल्की जाति का जानकर, उन लोगों ने पूछा, 'भाई, रास्ते

में कोई तोड़ा मिला है ?

सगराम ने कहा, 'मैंने देखा है, परन्तु यहाँ से दूर पड़ा हुआ है।' इतना कहकर सगराम ने उसकी स्थिति के बारे में बताया, परन्तु उन लोगों को विश्वास न हुआ; इसलिए वे सगराम को साथ में लेकर उस स्थान पर आए, तो देखा कि तोड़ा ज्यों का त्यों पड़ा हुआ था। उस पर मिट्टी डाल दी गई थी।

सगराम की वह नैतिकता देखकर उन लोगों को आश्चर्य हुआ। वे तोड़ा के बदले में सगराम को इनाम देने लगे, परन्तु सगराम ने उसे नहीं लिया और विनयपूर्वक कहा, 'हम तो भगवान श्रीस्वामिनारायण के भक्त हैं। हमने अपना धर्म निभाया है।'

पदयात्रा करते हुए सगराम अपनी पत्नी के साथ सूरत आया। सूरत में उस समय मुक्तानन्द स्वामी बिराजमान थे। स्वामीजी को सगराम पर पूरा विश्वास था। एक हरिभक्त से सिफ़ारिश करके, उन्होंने सगराम और उसकी पत्नी को नौकरी पर रखवाया। जब स्थिति सुधर गई, तो सगराम वापस घर चला गया।

सगराम बाघरी वढवाण के पास लीमली गाँव का निवासी था। मुक्तानन्द स्वामी ने उसे वर्तमान धारण करवाकर, सत्संग में शामिल किया था। भोलेभाले

हृदय का सगराम, मुक्तानंदस्वामी की आज्ञा से ब्राह्मण से भी अधिक श्रद्धा और विश्वास के साथ नियम-धर्म का पालन करता था। यदि किसी पराई स्त्री से अनजाने में स्पर्श हो जाता, तो वह स्नान करके उपवास कर लेता था।

एकबार भावनगर के महाराजा वजेसंगबापू से किसी ने कहा कि स्वामिनारायण वाघरी को भी वैष्णव बना देते हैं। यह सुनकर महाराजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने सगराम को मिलने के लिए अपने राजमहल में बुलाया। वहाँ जाकर सगराम नम्रतापूर्वक महाराजा के चरणों के पास बैठ गया। बापू ने उससे पूछा, 'सगराम! स्वामिनारायण ने तुम्हें कोई चमत्कार दिखाया है?'

'मालिक! आप तो बड़े राजा हैं। आपके आश्रय में मुझे बैठने को मिला, मेरे लिए यही सबसे बड़ा चमत्कार है। हम बाघरी पशु जैसा जीवन जीते हैं। स्वामिनारायण ने हमें नियम-धर्म देकर शुद्ध किया है।' सगराम की बातें सुनकर बापू बहुत प्रसन्न हुए।

सगराम की सच्ची भक्ति से श्रीहरि को उस पर वास्तविक रूप से प्रसन्नता उत्पन्न हुई। सगराम के मन में कभी-कभी यह भी विचार आता था कि श्रीहरि गाँव-गाँव पधारते हैं और भक्तों की झोपड़ियाँ पावन करते हैं, लेकिन यदि मेरी झोपड़ी में पधारें, तो कितना अच्छा होता!

कृपासागर श्रीहरि एक रात में अचानक सगराम के घर आ पहुँचे। उन्हें देखते ही सगराम के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसकी झोपड़ी में तो खड़े रहने के लिए भी जगह नहीं थी। अत: उसने श्रीहरि को एक मचिया पर बैठाया और नाचते-कूदते गाने लगा कि 'मेरी कुटिया में हाथी का वास' बाघरी के घर में भगवान भला क्यों आयेंगे? सगराम की पत्नी भी खुशी से पागल हो गई। श्रीहरि ने उसके हाथ का भोजन ग्रहण किया। भगवान भक्त का भाव देखते हैं, उसके कुल और जाति को नहीं।

सगराम विद्वान भी था। शियाणी गाँव के शिवराम भट्ट को उसने प्रश्नोत्तर में हराया था और भट्टजी श्रीहरि के आश्रित हो गए थे।

3. व्यापकानन्द स्वामी

जिस समय शीतलदास रामानन्द स्वामी का दर्शन करने के लिए फणेणी गाँव पहुँचे, उस समय रामानन्द स्वामी का देहोत्सर्ग हो चुका था। यह

समाचार सुनकर उन्हें बड़ा आघात लगा। उत्तर भारत के झरणा-परणा गाँव का वह मुमुक्षु युवक, रामानन्द स्वामी की प्रशंसा सुनकर वहाँ आया था।

श्रीहरि उसके मन की बात समझ गए। रामानन्द स्वामी का दर्शन कराने का आश्वासन देकर, उन्होंने उसे रुकने का आग्रह किया। श्रीहरि ने उसे 'स्वामिनारायण' मंत्र की धुन करने की आज्ञा दी। एकाएक चमत्कार हुआ। शीतलदास को श्रीहरि की इच्छा से समाधि हुई। उन्हें दिव्य आनन्द का अनुभव हुआ। कुछ देर के बाद जब वह समाधि में से जाग्रत हुए तो दिव्य दर्शन की बातें करते हुए बोले :

'तेजोमय धाम में, तेजोमय सिंहासन पर श्रीहरि बैठे हैं। राम-कृष्ण आदि अवतार, स्वयं रामानन्द स्वामी भी श्रीहरि के समक्ष खड़े होकर स्तुति कर रहे हैं। मैंने श्रीहरि की पूजा की। बाद में मुझे सभी मुक्तों की पूजा करनी थी, परन्तु मैं अकेला, जब कि मुक्तों संख्या बहुत अधिक!

'उस समय श्रीहरि ने मुझसे कहा कि तुम संकल्प करो कि 'राम-कृष्ण आदि अवतार अथवा रामानन्द स्वामी सर्वोपरि परब्रह्म पुरुषोत्तम हों, तो मेरे अनेक रूप हो जाएँ और मैं अनेक रूप से एक ही साथ सबकी पूजा करूँ।' मैंने उसी के अनुसार संकल्प किया, परन्तु कुछ भी न हुआ।

'उसके पश्चात् श्रीहरि ने कहा, तो मैंने यह संकल्प किया कि यदि श्रीहरि परब्रह्म पुरुषोत्तम हों, तो मेरे अनेक रूप हो जाएँ और मैं सबकी पूजा कर सकूँ। ऐसा संकल्प करते ही मेरे अगणित शिष्य हो गए और मैंने एक ही साथ सबकी पूजा की। उस समय रामानन्द स्वामी ने मुझसे कहा कि यह सहजानन्द स्वामी सभी अवतारों के कारण हैं और हम सब इनके दास हैं। उस धाम की शोभा अद्‌भुत थी। कितना सुंदर श्रीहरि का स्वरूप था! उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।'

शीतलदास के मुख से यह बात सुनकर सारी सभा स्तब्ध रह गई! उस समय अन्य कई भक्तों को समाधि में इसी प्रकार से दिव्य दर्शन हुआ। शीतलदास को भागवती दीक्षा प्रदान करके श्रीहरि ने उनका नाम 'व्यापकानन्द स्वामी' रखा।

एक बार व्यापकानंद स्वामी घूमते-फिरते थानगढ़ के समीप वासुकिनाग के प्राचीन मन्दिर में उतरे। वहाँ पर नृत्य की मुद्रा में पत्थर की

सुंदर पुतलियों से गुम्बद सजाया गया था। स्वामी की दृष्टि उस पर पड़ी और उनकी वृत्ति खिंच गई। अचानक पुतलियाँ नृत्य करने लगीं, तो उन्हें ध्यान हुआ कि श्रीहरि की छोटी-मोटी आज्ञा कितनी महत्त्वपूर्ण है! साधु को स्त्री की मूर्ति तथा प्रतिमा भी देखना निषेध है; यह बात समझ में आई।

एकबार स्वामीजी घूमते-फिरते हमीर खाचर के यहाँ पधारे। उस समय महल में रुदन हो रहा था। इस विषय में स्वामीजी ने जब पूछताछ की, तो पता चला कि बापू की घोड़ी मर गई है। घोड़ी के मरने पर बापू को पुत्र के मरने जैसा दुःख हुआ।

वह देखकर स्वामी को दया आ गई। स्वामिनारायण मंत्र बोलते हुए स्वामी ने एक अंजलि जल घोड़ी पर छिड़का और एक मच्छर का जीव लेकर उन्होंने घोड़ी में डाल दिया। घोड़ी हिनहिनाती हुई उठ बैठी। महल में आनंद छा गया। बापू हमीर खाचर स्वामी के पैरों में गिर पड़े।

कुछ दिनों के बाद व्यापकानंद स्वामी, श्रीहरि के पास झींझावदर पधारे। वहाँ इनके पहुँचने पर श्रीहरि ने इनका कोई सत्कार नहीं किया, बल्कि वहाँ पर उपस्थित खीमबाई से व्यंग्य में श्रीहरि ने कहा, 'मेरे प्रभु आए हैं, उनके लिए भोजन की व्यवस्था करना।'

'प्रभु! आपका प्रभु कौन है?' - खीमबाई ने विस्मयपूर्वक पूछा।

'व्यापकानंद स्वामी मेरे प्रभु हैं।' – श्रीहरि ने हँसते हुए कहा।

व्यापकानन्द स्वामी बहुत दु:खी हुए और श्रीहरि से बोले, 'प्रभु! मैं तो आपका सेवक हूँ, मुझे ऐसा क्यों कहते हैं?'

'आप तो मुर्दे को जिन्दा कर देते हैं, इसीलिए आपको मैंने प्रभु कहा।' – श्रीहरि ने दृढ़तापूर्वक कहा। व्यापकानंद स्वामी ने कहा, 'मुझे बापू हमीर खाचर पर दया आ गई; इसलिए मैंने एक जीव उसमें से इसमें डाल दिया, लेकिन मुझसे भूल हुई हो, तो मुझे क्षमा करें।'

कुछ क्षणों के बाद श्रीहरि ने व्यापकानंद स्वामी को समझाते हुए कहा, 'हम मुर्दे को जिन्दा करने नहीं आये हैं। हमें तो प्रत्येक जीव को आत्मा तथा परमात्मा का यथार्थ ज्ञान देना है। अज्ञानता दूर करके, सभी को अक्षरधाम में ले जाना है। मेरी इच्छा से घोड़ी जीवित हो गई, परन्तु किसी राजा के मरे हुए राजकुमार को यदि आप जीवित नहीं कर पाएँगे, तो वह आपको मार डालेगा। अत: उपदेश दीजिए, परन्तु चमत्कार मत दिखाइए।'

व्यापकानंद स्वामी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने गद्‌गद होकर श्रीहरि से माफ़ी माँगी और उनकी आज्ञा से गढ़पुर आए।

4. गोडी

(राग पूरब, पद–1)

सन्त समागम कीजे हो निशदिन... सन्त
मान तजी सन्तन के मुख से, प्रेम–सुधारस पीजे... हो निश०
अन्तर कपट मेटके अपनो, ले उनकुं मन दीजे... हो निश०
भवदु:ख टळे, बळे सब दुष्कृत, सब विधि कारज सीजे... हो निश०
ब्रह्मानन्द कहे सन्त की सोबत, जन्म सुफल करी लीजे... हो निश०

पद–2

सन्त परम हितकारी जगत मांही... सन्त
प्रभुपद प्रकट करावत प्रीति, भरम मिटावत भारी... जगत०
परम कृपालु सकल जीवन पर, हरिसम सब दु:खहारी... जगत०
त्रिगुणातीत फिरत तनु त्यागी, रीत जगत से न्यारी... जगत०
ब्रह्मानन्द कहे सन्त की सोबत, मिलत है प्रकट मुरारि... जगत०

5. धुन

राम कृष्ण गोविन्द! जय जय गोविन्द!
हरे राम गोविन्द! जय जय गोविन्द!
नारायण हरे! स्वामिनारायण हरे!
स्वामिनारायण हरे! स्वामिनारायण हरे!
कृष्णदेव हरे! जय जय कृष्णदेव हरे!
जय जय कृष्णदेव हरे! जय जय कृष्णदेव हरे!
वासुदेव हरे! जय जय वासुदेव हरे!
जय जय वासुदेव हरे! जय जय वासुदेव हरे!
वासुदेव गोविन्द! जय जय वासुदेव गोविन्द!
जय जय वासुदेव गोविन्द! जय जय वासुदेव गोविन्द!
राधे गोविन्द! जय राधे गोविन्द!
वृन्दावनचन्द्र! जय राधे गोविन्द!
माधवमुकुन्द! जय माधवमुकुन्द!
आनन्दकन्द! जय माधवमुकुन्द!
स्वामिनारायण... स्वामिनारायण... स्वामिनारायण...

6. श्रीस्वामिनारायणाष्टकम्[7]

अनन्त-कोटीन्दु-रविप्रकाशे
धाम्न्यक्षरे मूर्तिमताक्षरेण।
सार्धं स्थितं मुक्तगणावृतं च
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥1॥

अनन्त कोटि चन्द्र और सूर्य के समान प्रकाशमान, तेजोमय अक्षरधाम में, अनादि मूर्तिमान अक्षर और अनन्त मुक्तों से घिरे हुए भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (1)

---

7. शास्त्रीजी महाराज कहते थे कि यह अष्टक जो एक बार बोलेगा, उसे एक राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होगा। अत: प्रत्येक हरिभक्त को संध्या आरती के पश्चात् यह अष्टक अवश्य बोलना चाहिए।

ब्रह्मादिसम्प्रार्थनया पृथिव्यां
जातं समुक्तं च सहाक्षरं च।
सर्वावतारेष्ववतारिणं त्वां
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥2॥

ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रार्थना से पृथ्वी पर अक्षर (स्वामीश्री गुणातीतानन्दजी) और मुक्तों (स्वामीश्री गोपालानन्दजी आदि) के साथ प्रकट हुए, सभी अवतारों के अवतारी भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (2)

दुष्प्राप्यमन्यैः कठिनैरुपायैः
समाधिसौख्यं हठयोगमुख्यैः।
निजाश्रितेभ्यो ददतं दयालुं
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥3॥

हठयोग आदि कठिन साधनों से भी समाधि दुर्लभ है। ऐसी समाधि का सुख अपने आश्रितों को केवल कृपा से ही सहज में प्रदान करनेवाले दयालु प्रभु भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (3)

लोकोत्तरै र्भक्तजनाँश्चरित्रै
राह्लादयन्तं च भुवि भ्रमन्तम्।
यज्ञाँश्च तन्वानमपारसत्त्वं
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥4॥

अपने अलौकिक दिव्य चरित्रों के द्वारा भक्तजनों को आनन्द देनेवाले, पृथ्वी पर सदा विचरण करते हुए, अनेक यज्ञों का प्रचार करनेवाले, अपार पराक्रमी भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (4)

एकान्तिकं स्थापयितुं धरायां
धर्मं प्रकुर्वन्तममूल्यवार्ताः।
वचः सुधाश्च प्रकीरन्तमूर्व्यां
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥5॥

पृथ्वी पर एकान्तिक धर्म की स्थापना करने के लिए, अमूल्य कथावार्ताओं के द्वारा उपदेश देनेवाले, वचनामृतरूपी अमृत-वृष्टि करनेवाले भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (5)

विश्वेशभक्तिं सुकरां विधातुं
बृहन्ति रम्याणि महीतलेऽस्मिन् ।
देवालयान्याशु विनिर्मिमाणं
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥6॥

समस्त विश्व में परमात्मा पुरुषोत्तम नारायण की भक्ति, सभी लोग आसानी से कर सकें, उसके लिए इस भूमण्डल पर बड़े-बड़े रमणीय, दिव्य देवालय, मंदिर शीघ्रतापूर्वक निर्माण करनेवाले भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (6)

विनाशकं संसृतिबन्धनानां
मनुष्यकल्याणकरं महिष्ठम् ।
प्रवर्तयन्तं भुवि सम्प्रदायं
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥7॥

संसार के बन्धनों का नाश करनेवाले और मानवमात्र का कल्याण करनेवाले, महान सम्प्रदाय को पृथ्वी पर स्थापित करनेवाले भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (7)

सदैव सारंगपुरस्य रम्ये
सुमन्दिरे ह्यक्षरधामतुल्ये ।
सहाक्षरं मुक्तयुतं वसन्तं
श्रीस्वामिनारायणमानमामि ॥8॥

साक्षात् अक्षरधाम के समान सारंगपुर के सुन्दर मंदिर में अक्षरब्रह्म श्रीगुणातीतानन्द स्वामी तथा महामुक्त श्रीगोपालानन्द स्वामी के साथ सदैव बिराजमान भगवान श्रीस्वामिनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ। (8)

7. प्रार्थना

निर्विकल्प उत्तम अति, निश्चय[8] तव घनश्याम,
माहात्म्यज्ञानयुक्त भक्ति तव, एकान्तिक सुखधाम ॥1॥

मोहि में तव भक्तपनों, तामें कोई प्रकार,
दोष न रहे कोई जात को, सुनियो धर्मकुमार ॥2॥

8. पंक्ति 1 से 4 तक प्रार्थनाएँ।

तुम्हारो तव हरिभक्त को, द्रोह कबु न होय,
एकान्तिक तव दास को, दीजे समागम मोय ॥ 3 ॥
नाथ! निरन्तर दर्श तव, तव दासन को दास,
एहि मागुं करी विनय हरि! सदा राखियो पास ॥ 4 ॥
हे कृपालो! हे भक्तपते! भक्तवत्सल! सुनो बात,
दयासिन्धो! स्तवन करी, मागुं वस्तु सात ॥ 5 ॥
सहजानन्द महाराज के, सब सत्संगी सुजाण,
ताकुं होय दृढ़ वर्तनो, शिक्षापत्री प्रमाण ॥ 6 ॥
सो पत्री में अति बड़े, नियम एकादश जोय,
ताकि विक्ति करत हुं, सुनियो सब चित्त प्रोय ॥ 7 ॥
हिंसा[9] न करनी जन्तु की परत्रियासंग को त्याग,
मांस न खावत मद्यकुं, पीबत नहीं बड़भाग ॥ 8 ॥
विधवाकुं स्पर्शत नहीं, करत न आत्मघात,
चोरी न करनी काहु की, कलंक न कोईकुं लगात ॥ 9 ॥
निन्दत नहि कोई देवकुं, बिन खपतों नहि खात,
विमुख जीव के वदनसे, कथा सुनी नहीं जात ॥ 10 ॥
एही धर्म के नियम में, बरतो सब हरिदास,
भजो श्रीसहजानन्दपद, छोड़ी ओर सब आस ॥ 11 ॥
रही एकादश नियम में, करो श्रीहरिपद-प्रीत,
प्रेमानन्द कहे धाम में, जाओ नि:शंक जग जीत ॥ 12 ॥

– साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते समय बोले जाते श्लोक[10] –

कृपा करो मुज उपरे, सुखनिधि सहजानन्द,
गुण तमारा गाववा, बुद्धि आपजो सुखकन्द ॥ 1 ॥
अक्षरपुरुषोत्तम अहीं, पृथ्वी उपर पधारिया,
अनेक जीव उद्धारवा, मनुष्यतन धारी रह्या ॥ 2 ॥

---

9. पंक्ति 8 से 10 तक श्रीहरि द्वारा बतलाए गए ग्यारह नियम।
10. सायंकाल में गोडी बोलने के पश्चात् आरती, धुन श्रीस्वामिनारायण अष्टकम्, प्रार्थना के पश्चात् भगवान को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए श्लोक बोलना चाहिए। बाद में श्रीजीमहाराज, गुणातीतानंद स्वामी तथा गुरुपरंपरा का स्तुति श्लोक बोलें।

8. रत्नाकर और चार भाई

एक गाँव में चार भाई रहते थे। चारों में बड़ी एकता थी, परन्तु वे बहुत गरीब थे। वे चारों सदैव इसी चिंता में डूबे रहते थे कि पैसा कहाँ से मिले? उनको ऐसा लगा कि समुद्र को रत्नाकर कहते हैं, इसलिए सागर देवता को प्रसन्न करें।

वे चारों समुद्र के किनारे गए और वहीं पर तपस्या शुरू कर दी। प्रतिदिन स्नान-ध्यान करने के बाद वे समुद्र का भजन करते और दिन में एकबार भोजन ग्रहण करते थे। दोपहर को रसोई तैयार करने का कार्य चारों भाइयों ने आपस में बाँट लिया।

पहला गाँव में से आटा मंगाता, दूसरा भाई कुएँ से पानी खींचकर लाता, तीसरा भाई लकड़ी काटकर लाता और चौथा भाई रसोई तैयार करता था। वे सभी एकसाथ बैठकर प्रेम से भोजन करते थे। यही उनका दैनिक क्रम था।

इस प्रकार से वे चारों तपस्या करते और आपस में ईर्ष्या नहीं करते थे। सभी भाई हिल-मिलकर रहते थे। उसे देखकर समुद्र देवता प्रसन्न हुए, परन्तु उन्होंने चारों भाइयों की परीक्षा लेने का विचार किया।

चारों भाई अपने-अपने कार्य में डूबे रहते थे। एक दिन समुद्रदेवता ब्राह्मण का रूप धारण करके वहाँ आ पहुँचे। एक भाई आटा लेने गया था, उससे ब्राह्मण रूप में समुद्र देवता मिले। पूछताछ करने पर उस भाई ने सारी बातें बतलाई। ब्राह्मण देवता ने बीच ही में कहा, 'मैं अभी-अभी तुम्हारे भाई से मिलकर आ रहा हूँ। तुम इतना परिश्रम करते हो, परन्तु तुम्हारा भाई तुम्हारे खिलाफ बोलता है।'

इससे आगे और कुछ बोलते, उसके पहले ही उस भाई ने ब्राह्मण को धमकाते हुए कहा, 'मेरा भाई कभी ऐसा बोल ही नहीं सकता।'

मुँह लटकाए हुए ब्राह्मण वापस आ गया। अन्य तीनों भाइयों के पास जाकर उसने वही बात की, तो सभी ने एक जैसा ही जवाब दिया।

समुद्र देवता को विश्वास हो गया कि चारों भाइयों में बहुत एकता है। कदाचित् मैं उन्हें धन दूँगा, तो वे आपस में झगड़ा नहीं करेंगे और धन का दुरुपयोग भी नहीं करेंगे।

समुद्रदेव मूर्तिमान होकर प्रकट हुए और चारों भाइयों को दोनों हाथों से उठाकर रत्न दिए।

'जहाँ सुमति तँह सम्पति नाना' यह तो हम सभी जानते हैं और सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी ने भी गाया है : 'थई एकमना प्रभुने भजीए' अर्थात् हमें एक जुट होकर रहना चाहिए।

हम सभी एकता बनाए रखें, किसी के विरुद्ध न बोलें, तभी भगवान प्रसन्न होते हैं। योगीजी महाराज भी हम सभी को एकता, सहयोग तथा सुहृद्‌भाव रखने की शिक्षा देते थे।

9. नेनपुर के देवजी भगत

एकबार कृपानंद स्वामी तथा गुणातीतानंद स्वामी विचरण करते हुए नेनपुर गाँव में देवजीभाई के घर पधारे। वे भगवान श्रीस्वामिनारायण के सच्चे भक्त थे। संतों का स्वागत करके, उन्होंने निवास की व्यवस्था की। भोजन के लिए जब पूछा, तो संतों ने 'ना' कह दिया। अंततः देवजीभाई 'बातें' सुनने के लिए संतों के पास बैठ गए।

श्रीहरि की चरित्र-लीलाओं तथा महिमा की अद्‌भुत बातें कहते हुए रात के बारह बज गए; इसलिए देवजीभाई ने कहा, 'स्वामी! आप चलकर

आए हैं, बहुत थके होंगे; अत: आप विश्राम कीजिए।' इतना कहकर वह खेत में चले गए। संतों ने पूछा : 'आप कब सोएँगे ?'

'स्वामी! मैं तो अब खेत का चक्कर लगाऊँगा, उसके बाद दो सौ माला फेरूँगा, तब तक नींद कुछ दूर तक आकर खड़ी रहेगी। जब उसे बुलाऊँगा, तब वह आएगी।' देवजीभाई ने सामान्य ढंग से कहा, जिसे सुनकर संतों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

देवजीभाई भगवान श्रीस्वामिनारायण के एकांतिक भक्त थे।

एकबार श्रीहरि सभा में माला फेर रहे थे। सुराखाचर ने सहजभाव से पूछा, 'प्रभु! मैं तो आपके नाम की माला फेरता हूँ, परन्तु आप किसकी माला फेरते हैं ?'

'मैं, अपने भक्त की माला फेरता हूँ।' – श्रीहरि ने कहा।

'कौन से भक्त ?' – सुराखाचर एक के बाद एक-एक करके नाम बोलने लगे।

'सभी भक्त सच्चे हैं, लेकिन माला के मनके में आते नहीं।' यह कहकर श्रीहरि ने देवजीभाई को याद किया और मनके का स्पर्श किया!

ऐसे परम भक्त थे, देवजीभाई!

देवजीभाई की तरह उनकी पत्नी भी, वैसी ही भक्त थीं। उन्हें एक पुत्र था, वह अखण्ड रूप से श्रीहरि को देखता था। उसकी ऐसी स्थिति थी। जब वह बड़ा हुआ, तो विवाह के लिए लोग आने लगे। माता-पिता को ऐसा लगा कि 'यदि उसका विवाह करेंगे, तो श्रीहरि की मूर्ति का जो दर्शन उसे होता है और जो आनन्द मिलता है, वह नहीं मिलेगा।'

उसी दौरान श्रीहरि की ऐसी इच्छा हुई कि पुत्र धाम में चला गया। पति-पत्नी दोनों, इस घटना से बहुत प्रसन्न हुए! उसका कारण यह था कि पुत्र को श्रीहरि अपने पास अखण्ड सेवा में रख लिए थे।

पुत्र के निधन पर लोग घर पर सांत्वना देने आने लगे। इसलिए देवजीभाई ने अपनी पत्नी से कहा, 'यहाँ रहूँगा, तो सगे-सम्बंधी रोएँगे और दु:ख देंगे; इसलिए मैं खेत में जाकर रहूँगा और तुम घी से भरी हुई हंडिया लेकर गढ़पुर चली जाओ। श्रीहरि को घी अर्पण करना और मेरा खुशी का समाचार देना।'

देवजी की पत्नी सिर पर हंडिया रखकर गढडा पहुँच गई। उस समय श्रीहरि महल के ओसारे पर भोजन करने बैठे थे। घी की हंडिया उतारकर देवजीभाई की पत्नी ने दूर से ही श्रीहरि को प्रणाम किया तो श्रीहरि ने पूछा, 'क्यों? पटेल सुखी तो हैं न?'

'प्रभु! पटेल सुखी तो थे और अब अधिक सुखी हो गए हैं।' देवजीभाई की पत्नी ने कहा।

श्रीहरि को सबकुछ मालूम था, परन्तु सभी भक्तों को जानकारी हो जाए; इसलिए उन्होंने पूछा, 'क्या हुआ? पूरी बात कहो।'

लाडूबाई, जीवुबाई, हरजी ठक्कर आदि की उपस्थिति में देवजीभाई की पत्नी ने सारी बात बताई।

वह सुनकर श्रीहरि ने सभी से कहा, 'उस भगत की समझदारी तो देखिए? युवा पुत्र धाम में गया, तो प्रसन्न हो गए। जबकि यहाँ पर पाँच वर्ष की हीरूबा (पाँचुबा की पुत्री) धाम में गई, तो अभी तक महल में शोक मनाया जा रहा है और मेरा भोजन भी बंद हो गया! यदि शोक ही करना हो, तो हरजी ठक्कर को शोक मनाना चाहिए; क्योंकि हीरूबाई पूर्वजन्म में उनकी माता थीं और मुझे भोजन कराने का उनका संकल्प था; इसलिए उन्होंने महल में जन्म लिया और मुझे दूध-पूड़ी खिलाकर स्वयं धाम में चली गई।'

यह सुनकर लाडूबाई तथा जीवुबाई का शोक मिट गया और वे मन ही मन देवजीभाई की पत्नी को प्रणाम करने लगीं।

10. गुरु-शिष्य

गुरु

'गु' अर्थात् अन्धकार और 'रु' अर्थात् प्रकाश। अज्ञान के अंधकार से ज्ञान के प्रकाश की ओर ले जानेवाले संत को ही गुरु कहते हैं। समस्त जीव माया के अन्धकार में भटक रहे हैं। अहंकार और ममत्व को ही माया कहते हैं। 'मैं और मेरा' जिसे यह माया कभी स्पर्श न कर सके, वही गुरु है। वेदरस में श्रीहरि ने कहा है, 'गुरु ही ब्रह्म है।'

सारंगपुर गाँव में श्रीहरि ने फूलदोल के उत्सव में 'सद्गुरु खेले वसन्त' नामक होरी का पद बोलकर संतों से पूछा था, 'यह सद्गुरु कौन?'

संतों ने कहा, 'आप स्वयं हैं।'

यह सुनकर श्रीहरि ने अपनी छड़ी गुणातीतानन्द स्वामी की छाती पर छुआकर कहा था, 'वह सद्गुरु तो ये गुणातीतानन्द स्वामी हैं, जो मेरे रहने के ब्रह्मधाम हैं।' गुणातीत कहे जानेवाले रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण - इन तीन गुणों से अतीत अर्थात् जो परे हैं, ऐसे ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष ही गुरु हैं।

भगवान श्रीस्वामिनारायण को पाने के लिए गुरु ही द्वार हैं। जीव को शुद्ध करके, उसे ब्रह्मरूप करके भगवान की सेवा में जो जोड़ दे, उसी को गुरु कहते हैं।

कठोपनिषद में कहा गया है, 'उठो, जागो, ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुष के पास जाकर आत्मज्ञान प्राप्त करो।'

श्रीमद्भागवत में भी परब्रह्म परमात्मा में सदैव निमग्न रहनेवाले ब्रह्मनिष्ठ तथा शास्त्र के शब्द मात्र के अर्थ को जाननेवाला 'श्रोत्रिय' गुरु के पास जाने के लिए जिज्ञासु को आदेश दिया है। कहा भी गया है -

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, (जिसने) गोविन्द दियो बताय॥'

मूल अक्षरब्रह्म एक ही है, वही गुरु है और वह प्रकट है। ऐसे गुरु घर-घर नहीं होते। वह तो एक ही होता है। गुणातीतानन्द स्वामी के बाद गुणातीत स्वरूप भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज तथा योगीजी महाराज; जिन्होंने श्रीजीमहाराज को अखण्ड धारण किया था, वही सच्चे गुरु हैं। गुणातीत स्वरूप - ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज में भगवान श्रीस्वामिनारायण अखण्ड बिराजमान थे, वे ही भगवान आज महंत स्वामी महाराज द्वारा प्रकट हैं; इसलिए वे ही सच्चे गुरु हैं। उनका आश्रय लेने से ब्रह्मभाव प्राप्त होता है और श्रीजीमहाराज की प्राप्ति होती है।

गुरु अपने शिष्य के लिए उपासना तथा भक्ति सिद्ध करने का आदर्श है। आदर्श सदैव सम्पूर्ण होना चाहिए, तभी शिष्य में उसका दैवत आता है। निष्काम, निर्लोभ, निःस्वाद, निर्मान, निःस्नेह जैसे पंच वर्तमानों सहित जो सम्पूर्ण हो और भगवान में सेवकभाव रूप से दृढ़ता हो, वही सच्चा गुरु है।

गुरु की सिद्धि तीन प्रकार से देखनी चाहिए। गुरु का वृत्तांत-चरित्र जाने, गुरु का अपना व्यवहार देखे तथा उसके शिष्य का व्यवहार देखे।

भागवत में ऋषभदेवजी कहते हैं, 'जो जन्म-मृत्यु से मुक्त न करा सके, वह गुरु नहीं है।'

जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्य ज्ञान से युक्त होकर भक्ति तथा ब्रह्म-परब्रह्म के शुद्ध स्वरूप की सर्वोपरि उपासना करता हो, ऐसा परम एकान्तिक संत ही गुरुपद के लिए योग्य है। सच्चे गुरु की प्राप्ति, पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों से होती है। अतः हमें उपरोक्त लक्षण देखकर गुरु करना चाहिए।

शिष्य

जिस प्रकार से हमने गुरु का स्वरूप देखा, उसी प्रकार से आदर्श शिष्य का स्वरूप एवं उनके लक्षण देखने चाहिए। गुरु में अतिशय प्रेम तथा उनके वचन में अत्यन्त ही श्रद्धा और विश्वास शिष्य का लक्षण है। जिस प्रकार से अर्जुन ने श्रीकृष्ण के प्रति कहा था, *'शिष्यस्तेऽहं साधि मां त्वां प्रपन्नम्।'* अर्थात् 'मैं आपका शिष्य हूँ तथा आपकी शरण में आया हूँ। मुझे आप उपदेश दीजिए।' ऐसी शरणागति के स्वर शिष्य के हृदय से निकलने चाहिए।

सत्यकाम जाबालि गुरु के आश्रम में ब्रह्मविद्या पढ़ने गया। गुरुने उसे चार सौ गायें देकर कहा, 'इनमें से हज़ार गायें हो जाएँ, तभी आश्रम में लौटाना।'

सत्यकाम ने गुरु की आज्ञा के अनुसार गायों की बहुत सेवा की। जब हज़ार गायें हो गईं, तो सत्यकाम की मुखाकृति पर ब्रह्मतेज झलकने लगा। गुरुकृपा से उसे स्वयं ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया।

भगतजी महाराज ने भी गुणातीतानन्द स्वामी के वचन पर अपना शरीर त्याग दिया था, 'तन करी नाखे रे, गुरुवचने चूरेचूरा,' ऐसी उन्होंने सेवा की कि स्वामी उन पर प्रसन्न हो गए।

शास्त्रीजी महाराज ने एक बार योगीजी महाराज से कहा था, 'जोगी! इन मज़दूरों और हरिभक्तों को हमेशा भोजन कराना।' शास्त्रीजी महाराज को दुबारा इसे याद नहीं कराना पड़ा। 40 वर्षों तक योगीजी महाराज ने गुरु की इस आज्ञा का पालन किया।

गुरु ही शिष्य की आत्मा है। गुरु की आज्ञा के अनुसार यदि आचरण किया जाए, तो आत्मारूप होकर किया गया आचरण कहा जाएगा। गुरु के

द्वारा ही शिष्य ब्रह्मरूप होता है, फिर भी गुरु के प्रति पूज्यभाव नहीं भूलता।

गुणातीतानन्द स्वामी कहते थे, 'गुरु यदि अंधेरे में बैठे हों और शिष्य के प्रकाश से गुरु का दर्शन होता हो, तो भी शिष्य यही समझता है कि यह मेरे गुरु द्वारा दिया हुआ तेज है।' यह है गुरु के प्रति पूज्यभाव की पराकाष्ठा। योगीजी महाराज ने सत्संग को इतना अधिक प्रसारित किया, फिर भी शास्त्रीजी महाराज को हमेशा आगे रखा।

'सम्प्रदायो गुरुक्रमः' शास्त्रों में ऐसा कहा गया है। उसके अनुसार गुणातीत सत्पुरुष की परम्परा में आज प्रकट ब्रह्मस्वरूप महंतस्वामीजी महाराज हमारे गुरु हैं। आदर्श गुरु तो प्राप्त हुए हैं, लेकिन उनकी कृपा से हमें आदर्श शिष्य बनना चाहिए।

11. आत्मानन्द स्वामी

रामानन्द स्वामी के कुछ संतों को भगवान श्रीस्वामिनारायण गुरुभाई मानते थे और उन्हें 'भाई' कहकर बुलाते थे। 'भाई' रामदास स्वामी के देहोत्सर्ग के पश्चात् उनकी गद्दी श्रीहरि ने आत्मानन्द स्वामी को सौंपी थी। उसी समय से वे भाई स्वामी अथवा भायात्मानन्द स्वामी के नाम से पहचाने जाने लगे। सम्प्रदाय में वृद्धात्मानन्द स्वामी के नाम से भी उनका उल्लेख किया गया है।

मूल रूप से मारवाड के रहनेवाले इस संत का जन्म संवत् 1799 में ऊँटवाल गाँव में हुआ था। भगवान से मुलाकात करने के लिए उन्होंने तीर्थ, व्रत तथा अन्य अनेक उपायों का इस्तेमाल किया था। अंत में वृद्धावस्था में उन्हें, सोरठ के मेघपुर गाँव में श्रीहरि का निश्चय हुआ और वे श्रीहरि के आश्रित बन गए।

भगवान श्रीस्वामिनारायण की छोटी-बड़ी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने की उन्हें बड़ी रुचि थी; इसीलिए उन्हें 'वचन की मूर्ति' कहा जाता था। श्रीहरि ने अनेक कड़े नियम दिए, जिसका उन्होंने दृढ़ता से पालन किया। श्रीहरि ने षट्रसत्याग का वर्तमान संतों को दिया था। छः मास के पश्चात् उन्होंने इस वर्तमान से सभी को मुक्त किया, परन्तु भाई स्वामी को उस बात का समाचार न मिला। इसीलिए उन्होंने बहुत समय तक

षट्रसत्याग के नियम का पालन किया। बाद में जब श्रीहरि से मिले, तो उन्होंने नियम का त्याग किया।

शरीर के प्रति उनका कोई विशेष आदर न था। जब वे स्नान करते, तो कभी भी शरीर पर हाथ फेरते ही नहीं थे। उनके शरीर पर अत्यधिक बाल थे; इसलिए उनके पूरे शरीर में जूं पड़ गईं। जब कोई जूं शरीर से बाहर गिरती, तो वे उसे उठाकर पुनः शरीर पर डाल देते और कहते थे, 'ले यह तेरा खाद्य है।'

भगवान श्रीस्वामिनारायण को जब इस बात का पता चला, तो उन्होंने स्वामी को सभा में बुलाया और नाई से शरीर के सारे बाल निकलवा दिये। गर्म पानी से उनको स्नान कराया गया और दवा लगाकर शरीर संभालने की आज्ञा दी।

जब कि आत्मानंदस्वामी का निश्चय ऐसा था कि स्वयं कभी भी अपने शरीर का ध्यान नहीं रखना चाहिए। एकबार उन्हें पूरे शरीर में खुजली का रोग हो गया। उन्हें एक गाँव से दूसरे गाँव को विचरण के लिए जाना था। उनके साथ में गुणातीतानन्द स्वामी भी थे। बैलगाड़ी की व्यवस्था की गई, परन्तु गाडीवान गंतव्य तक जाने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए स्वामी ने कहा, 'मेरा नाम 'आत्मानन्द' है, उसे आज मैं सार्थक करूँगा।' इतना कहकर वे पैदल चल दिए। खुजली के दौरान शरीर में निकले हुए फोड़े फूटने लगे, जिसमें से मवाद निकलने लगा। बाद में दूसरे गाँव पहुँचने पर गुणातीतानन्द स्वामी ने उनके शरीर को पोंछकर नहलाया। गर्म जल से स्नान करवाया तथा औषध लगा कर उनकी बहुत सेवा की।

उनकी ऐसी आत्मस्थिति को देखकर श्रीहरि अनेक बार अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे, उनको हार अथवा प्रसादी देते थे।

बाद के दिनों में श्रीहरि की आज्ञा से वे धोलेरा रहने लगे। जब वे सौ वर्ष के हो गए, तो उन्हें नये दाँत भी निकलने लगे। श्रीहरि के प्रति उनके हृदय में अनन्य श्रद्धा और प्रेम था। श्रीहरि के अक्षरधामगमन के बाद वे प्रायः वागड गाँव रहने लगे। गुणातीतानन्द स्वामी ने उनके साथ कईबार विचरण किया था और उनकी सेवा-सुश्रूषा की थी, इसलिए भाईस्वामी उनके प्रति अपूर्व सद्भाव रखते थे।

आचार्यश्री रघुवीरजी महाराज के साथ एक बार वे नडियाद पधारे। वहाँ पर पधरावनी के दौरान, एक हरिभक्त के घर वरिष्ठ संतों के लिए कुर्सियाँ रखी गई थीं, जो भाईस्वामी को पसंद नहीं आया; इसलिए दूसरे दिन उन्होंने पधरावनी में जाने से इन्कार कर दिया। आचार्यजी महाराज को कहलवा दिया कि 'आपके बाप ने हमारी आँखों पर पट्टी बंधवाकर, भरी बाजार में घूँघट निकलवाया और आपने स्त्रियों के बीच साधुओं को खड़ा कर रखा है। कुर्सियाँ निकलवा दीजिए, तभी हम पधरावनी के लिए आएँगे।'

आचार्य महाराज ने उसी प्रकार से व्यवस्था की।

ऐसा था उनका धर्म-पालन करने का आग्रह। वे प्राय: कहा करते थे कि प्रेम और धर्म-पालन के बीच पटरी नहीं जमती। यदि धर्म रखना हो, तो प्रेम का त्याग करना पड़ेगा और यदि प्रेम रखना है, तो धर्म का त्याग करना पड़ेगा।'

भाई स्वामी वागड़ के समीप अणियाली गाँव में रहते थे। उनकी आयुष 116 वर्ष की हो चुकी थी। एक बार गुणातीतानन्द स्वामी वहाँ पधारे, तब वे भाईस्वामी से पूछने लगे कि 'स्वामी! श्रीहरि आपको अपने धाम में क्यों नहीं ले जाते?'

'मेरे मन में भी यही विचार आता है कि मुझ में कौन सी कमी है?' भाईस्वामी ने सामान्य ढंग से कहा।

तब गुणातीतानन्द स्वामी ने भगवान श्रीस्वामिनारायण की सर्वोपरि महिमा भाईस्वामी को समझाई। श्रीहरि द्वारा कहे गए प्रसंगों को याद करके उन्होंने कहा, 'श्रीहरि सभी अवतारों में श्रेष्ठ अवतारी हैं।'

यह सुनकर भाईस्वामी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'आज तक तो मैं भगवान श्रीस्वामिनारायण को केवल अवतार ही समझता रहा। आज आपकी बातें सुनकर उनका सर्वोपरि स्वरूप समझ में आया।'

अब तक वे गुणातीतानन्द स्वामी को अपने भोजनपात्र में से प्रसादी देते थे, परन्तु आज उन्होंने आग्रहपूर्वक गुणातीतानन्द स्वामी के भोजनपात्र में से स्वयं प्रसादी ली। गुणातीतानन्द स्वामी बोटाद पधारे और उसी दिन संवत् 1916 की ज्येष्ठ कृष्णपक्ष षष्ठी के दिन भाईस्वामी अक्षरधाम में बिराजमान हो गए। उन्होंने श्रीहरि के लीला-प्रसंगों पर अपने अनुभवों का एक छोटा सा ग्रंथ भी लिखा है।

12. बोचासण के काशीदास

काशीदास सत्संगी हुए और उधर उनके पुत्र का देहान्त हो गया। उसके पश्चात् कुछ दिनों के बाद उनका एक बैल मर गया और उसके पश्चात् उनकी भैंस भी मर गई। इस घटना से उनके सगे-सम्बंधी व्याकुल हो उठे। उन लोगों ने काशीदास को बहुत समझाया, लेकिन काशीदास ने सत्संग का त्याग नहीं किया। भगवान श्रीस्वामिनारायण में उनकी आस्था अटूट रही।

मूल रूप से बोचासण के निवासी काशीदास से, बचपन में वर्णी वेशधारी भगवान श्रीस्वामिनारायण से सम्पर्क हुआ था। उसके पश्चात् द्वारिका की यात्रा पर जाते समय मार्ग में उन्हें संतगण मिले। संतों ने उन्हें प्रकट भगवान की महिमा समझाई। गढ़पुर पहुँचकर काशीदास ने भगवान श्रीस्वामिनारायण से वर्तमान धारण किया और उनके दृढ़ आश्रित हो गए।

एकबार श्रीहरि ने लोया गाँव में सुराखाचर के घर शाकोत्सव आयोजित किया। देश-प्रदेश से हरिभक्त बुलाए गए। काशीदास भी संघ लेकर आ गए। वहाँ पर श्रीहरि स्वयं सब्ज़ी तैयार करते और हल्दीवाले हाथ अपनी धोती में पोंछ लेते थे। उसके अलावा वे पसीने से भी डूब गए थे। ऐसा मनुष्य चरित्र देखकर, काशीदासजी के साथ आए हुए मुमुक्षुओं के मन में संदेह पैदा हुआ। सभी को भोजन कराकर, श्रीहरि ने सभा आयोजित की। वार्ता करते समय उन्होंने पूछा, 'कोई मुमुक्षु कष्ट सहकर बनारस जाए और वहाँ गंगा का मैला पानी देखकर गंगास्नान न करे और न तो पानी ही पीए, तो उसे क्या समझें ?

काशीदास मन ही मन समझ गए कि श्रीहरि ने किसलिए यह बात की ? उनके साथ के मुमुक्षुओं का संदेह दूर हो गया और उन्हें भाव सहित श्रीहरि का दिव्य निश्चय हुआ।

काशीदास के पिताजी किसी परोक्ष देवता के उपासक थे, परन्तु वे धीरे-धीरे काशीदास के गुणों से प्रभावित हुए और सत्संगी हो गए। काशीदास की निष्ठा और प्रेम के वश में होकर, श्रीहरि बत्तीस बार बोचासण पधारे थे।

बोचासण में काशीदास की नील की खेती थी। नील के पौधों को सड़ाकर नील बनाई जाती है। नील के कुण्डों में बहुत से जीवजंतु गिरकर मर जाते थे। नील की खेती में हिंसा अधिक होती थी और खेती में कुछ विशेष पैदा नहीं होता था; इसलिए काशीदास चिंतित थे। 'आपके घर सप्तधान्य (सात प्रकार का अनाज) बहुत पैदा होगा।' ऐसा वरदान देकर श्रीहरि ने काशीदास से नील के कुण्डों को निकलवा दिया और काशीदास के घर धन-धान्य के ढेर लग गए।

काशीदास के मन में प्रकट भगवान की प्राप्ति की उमंग छाई रहती थी। उन्होंने सोचा कि मैं अपने सगे-सम्बंधियों की पहचान श्रीहरि को कराऊँ, तो उनका भी कल्याण होगा। काशीदास के आमंत्रण से भगवान श्रीस्वामिनारायण बोचासण पधारे। एक सुन्दर सी सजी हुई बैलगाड़ी[11] (माफा) तैयार करके, काशीदास श्रीहरि को अपने सगे-सम्बन्धियों के घर-घर और गाँव-गाँव विचरण कराने ले गए। उसके परिणामस्वरूप उनके परिवार के सगे-सम्बंधी भी सत्संगी हो गए।

काशीदासजी का तम्बाकू का व्यापार भी बहुत बड़े पैमाने पर चलता था। तम्बाकू की गाड़ी भरकर वे गढडा के बाजार में बेचते थे। गढडा में ही रहकर वे श्रीहरि का सत्संग करते थे। श्रीहरि जब उन्हें घर जाने की आज्ञा देते तो वे कहते, 'अभी तम्बाकू बिकी नहीं है और कुछ वसूली भी बाक़ी है।'

तम्बाकू के व्यापार में एकबार उन्हें भारी घाटा हुआ। खरीदनेवालों की शिकायत पर सरकार की कोर्ट में शिकायत की गई और खेडा की कोर्ट में मुकदमा चला। धन का भुगतान न करने पर कोर्ट ने काशीदास को छः महीने की कैद की सजा सुनाई।

उन्हें खेड़ा की जेल में जाना पड़ा। जेल में जाने के बाद उनके मन में यही विचार उत्पन्न हुआ कि 'वहाँ पर बिना स्नान आदि किए पूजापाठ कैसे हो सकेगा? भोजन कैसे करूँगा? इसके अलावा गढ़पुर में उत्सव है, यहाँ श्रीहरि का दर्शन कैसे होगा?'

---

11. वह माफा (सजी हुई विशेष बैलगाड़ी) इस समय गांधीनगर के 'अक्षरधाम' स्मारक में है।

इन्हीं सब विचारों के अंतर्द्वन्द्व में काशीदास व्याकुल हो उठे।

प्रात:काल एक सिपाही उन्हें भोजन करने के लिए बुलाने आया। काशीदास ने स्नान करने की इच्छा व्यक्त की। भगत जानकर कुछ सिपाही काशीदास को बेड़ी लगाकर वात्रक नदी में स्नान कराने ले गए। वहाँ पहुँचकर काशीदास ने श्रीहरि का स्मरण करके ज्यों ही नदी में डुबकी लगाई, श्रीहरि ने उन्हें गढ़पुर में घेला नदी के किनारे रख दिया! पानी की सतह पर आने के बाद काशीदास ने देखा कि उनके हाथ-पैर में से बेड़ी-हथकड़ी गायब थी! आसपास की तरफ उन्होंने जब अपनी दृष्टि दौड़ाई, तो खेड़ा के बजाए वे स्वयं को गढ़पुर में पाया! वे दौड़ते हुए श्रीहरि के पास पहुँच गए।

उधर सिपाहियों ने काशीदास की बड़ी प्रतीक्षा की, परन्तु वे पानी में से बाहर निकले ही नहीं! उन्हें डूबा हुआ समझकर सिपाही वहाँ से वापस लौट गए। भगवान श्रीस्वामिनारायण ने छ: महीने तक काशीदास को गढडा में ही रोक रखा। बाद में आशीर्वाद देकर उन्हें वापस घर भेजा।

इस चमत्कार की बात सुनकर महाजनों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। काशीदास को सच्चा भक्त जानकर, उन लोगों ने अपना-अपना कर्ज़ माफ़ कर दिया। एकबार काशीदास की हवेली में आग लग गई, तो उस समय भी श्रीहरि ने उनकी रक्षा की थी।

श्रीहरि गढ़पुर में बिराजमान थे और एकाएक अपना हाथ घिसने लगे। कुछ ही क्षणों में श्रीहरि के हाथों में फफोले पड़ गए। सभी ने घबड़ाकर उसका कारण पूछा, तो श्रीहरि ने कहा, 'काशीदास का घर जल रहा था; उसी को मैं बुझाने गया था।'

उसके पश्चात् श्रीहरि ने वड़ताल में मंदिर का निर्माण प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने संतों को वडोदरा में अमीचंद सेठ के घर लक्ष्मीनारायण की मूर्तियाँ लेने भेजा। मूर्ति को लेकर संतगण आ रहे थे कि उसी समय भालज गाँव के पास भारी वर्षा होने लगी। बैलगाड़ी का पहिया कीचड़ में फँस गया। किसी भी तरह न निकलने पर बोचासण से आदमी भेजे गए और उन्होंने बैलगाड़ी निकालकर मूर्तियों को बोचासण में काशीदास के यहाँ भेजा।

वड़ताल में प्रतिष्ठा के अवसर पर भगवान श्रीस्वामिनारायण मूर्ति लाने

के लिए स्वयं बोचासण पधारे। उक्त अवसर पर नानीबा ने श्रीहरि को कंसार (हलुआ) बनाकर खिलाया और मूर्तियों को बोचासण में ही मंदिर बनाकर उसमें प्रतिष्ठित करने की विनती की। उस समय श्रीहरि ने काशीदास का हाथ पकड़कर वचन दिया था – 'यहाँ पर मैं अपने अक्षरधाम सहित बिराजमान होऊँगा।'

उसके पश्चात् अनेक अवसरों पर भगवान श्रीस्वामिनारायण ने काशीदासजी को आशीर्वाद दिया कि 'हम बोचासण में सर्वोपरि मंदिर स्थापित करेंगे।'[12]

संवत् 1918 में काशीदास अक्षरनिवासी हुए। उनकी संस्कारविधि में धर्मधुरंधर आचार्यश्री रघुवीरजी महाराज तथा अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी को उनके पुत्र देसाईभाई ने बुलाया था और सत्रह दिन तक सभी को रोककर उन्हें प्रसन्न किया था।

---

12. श्रीजीमहाराज के आशीर्वाद के अनुसार ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने बोचासण में सर्वोपरि मंदिर बनवाया और वहाँ श्रीजीमहाराज और गुणातीतानन्द स्वामी को प्रतिष्ठित किया। काशीदास के निश्चय की दृढ़ता की श्रीजीमहाराज ने गढडा मध्य प्रकरण के 59वें वचनामृत में प्रशंसा की है।

13. प्रार्थना

वंदन करूँ मैं प्रभु! भाव धरी,
स्वामिनारायण श्रीसहजानंदजी... ०ध्रुव
आप प्रभु हैं धाम के धामी,
बलवंता बहुनामी हरि... वंदन०1
जीव अनंत के मोक्ष के कारण,
अक्षरब्रह्म को लेकर ही... वंदन०2
पुरुषोत्तम नारायण प्रकटे,
भूतल मानव देह धरी... वंदन०3
स्वामी गुणातीत अनादि अक्षर,
पुरुषोत्तम सहजानंदजी... वंदन०4
यज्ञपुरुष में अखंड रह के,
उपासना शुद्ध प्रगट करी... वंदन०5
भक्ति तुम्हारी हमरे भीतर,
दीजे रोम ही रोम भरी... वंदन०6
हे भक्तवत्सल करुणासागर,
बिनती करूँ कर जोरी हरि... वंदन०7
हेतु रहित भक्ति तव पद की,
दीजिए तन मन धन से हरि... वंदन०8

14. भुज की लाधीबाई

भुज की लाधीबाई रामानन्द स्वामी की शिष्या थीं। रामानन्द स्वामी के देहोत्सर्ग के पश्चात् भगवान श्रीस्वामिनारायण भुज पधारे, तो उन्होंने एक हरिभक्त को लाधीबाई को बुला लाने की आज्ञा दी। उस हरिभक्त ने लाधीबाई से कहा, 'सहजानन्द स्वामी पधारे हैं और आपको दर्शन के लिए बुला रहे हैं।'

यह सुनकर लाधीबाई ने कहा, 'स्वामी तो मेरे लिए एक ही हैं और वे हैं – रामानन्द स्वामी! जिनकी मैं शिष्या हूँ। अत: मैं दर्शन के लिए नहीं आ

सकती।'

यह समाचार सुनने के बाद श्रीहरि ने पुनः कहलाया, 'आप रामानन्द स्वामी की शिष्या हैं, तो हम भी उन्हीं के शिष्य हैं। इसलिए हम दोनों गुरुभाई हुए। अतः हमें मिलना चाहिए।'

उसके पश्चात् लाधीबाई आई और श्रीहरि का दर्शन करके, जब वे वापस घर जा रही थीं, तो रास्ते में रघुनाथजी का मंदिर आया। वहाँ पर वे दर्शन करने गईं। दर्शन करते समय उन्हें रघुनाथजी की मूर्ति में साक्षात् श्रीहरि दिखाई दिए। उस दिव्य दर्शन से उनके मन में श्रीहरि के भगवान होने का निश्चय हुआ।

भगवान श्रीस्वामिनारायण भी रामानन्द स्वामी के शिष्य थे; इसलिए लाधीबाई उन्हें 'भाई' कहकर पुकारती थीं। एकबार लाधीबाई ने श्रीहरि को भोजन के लिए आमंत्रित किया। श्रीहरि ने उनसे कहा, 'बाई! मैं तो रोटी और हरी मिर्च का गोला ही खाता हूँ।'

लाधीबाई ने श्रीहरि के भोजन के लिए एक अच्छा सा पीढ़ा और चौकी रख दी। श्रीहरि के थाल में मिर्ची का लड्डू तथा रोटी आदि रख दिए गए। थोड़ी देर के बाद हलुआ और पूड़ी का थाल आया तथा रोटी और मिर्च का लड्डू ले लिया गया। श्रीहरि बड़े प्रेम से हलुआ और पूड़ी खाने लगे। लाधीबाई हाथ जोड़कर श्रीहरि के समक्ष बैठ गई। श्रीहरि ने जब अपनी दृष्टि उधर की ओर की, तो लाधीबाई को समाधि लग गई।

अक्षरधाम में भगवान श्रीस्वामिनारायण दिव्य सिंहासन पर बिराजमान हैं। अनन्त मुक्त श्रीहरि के आसपास सेवा में खड़े हैं। यहाँ तक कि रामानन्द स्वामी भी श्रीहरि की सेवा में लगे हैं। उसे देखकर लाधीबाई को बड़ा आश्चर्य हुआ। अगले ही क्षण रामानन्द स्वामी ने उन्हें झिड़की देते हुए कहा, 'लाधीबाई! श्रीहरि को तुच्छ शब्द क्यों बोलती हो? तुम्हारे घर जो भोजन ग्रहण करते हैं; वही यहाँ सिंहासन पर बिराजमान हैं। वे ही पुरुषोत्तम नारायण हैं और सभी अवतारों के कारण हैं। तुम गंगाराम मल्ल तथा सुन्दरजी सुथार से भी यही बात कहना।'

श्रीहरि की दृष्टि होते ही लाधीबाई समाधि में से जाग्रत हो गईं।

अभी पूरी तरह से वह होश में नहीं आई थी, उसके पहले ही श्रीहरि ने कहा, 'लाधीबाई! थोड़ा हलुआ दीजिए।' इतना सुनते ही लाधीबाई ने श्रीहरि को हलुआ परोसा। उसके पश्चात् उन्होंने समाधि का स्वानुभव सभी हरिभक्तों को सुनाया और सभी को श्रीहरि के स्वरूप का दृढ़ निश्चय कराया।

लाधीबाई ने यह निर्णय ले लिया था कि श्रीहरि जो कहेंगे, उसी आज्ञा का पालन करना है। श्रीहरि ने उनकी परीक्षा के लिए उनको आज्ञा दी कि वह लाल चुनरी पहनकर, चूड़ियाँ आदि गहने पहनकर, माथे पर बिन्दिया लगाकर, गाँव के बाहर जाकर कुएँ से पानी का घड़ा भर कर लाएँ।

विधवा होते हुए भी लाधीबाई सुवासिनी जैसा वेश धारण करके, सिर पर पानी का घड़ा रखकर, ताली बजाकर, कीर्तन गाती हुई भरी बाजार से होते हुए निकली। वह देखकर किसी ने पूछा, 'अरे लाधी! तुमने किसका घर बसाया?'

लाधीबाई ने बड़ी उमंग से उत्तर देते हुए कहा, 'मैंने तो पुरुषोत्तम नारायण का घर बसाया है।'

इस प्रकार भरी बाजार से होकर लाधीबाई जब श्रीहरि के पास आईं, तो उन्हें देखकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और उनको आशीर्वाद दिए।

हुताशनी के उत्सव में भाग लेने के लिए लाधीबाई गढडा आई। उस समय उदयपुर की महारानी झमकूबाई सबकुछ त्यागकर श्रीहरि के पास भगवान का भजन करने आई थी। श्रीहरि ने उन्हें श्वेत वस्त्र धारण कराकर उनका नाम 'माताजी' रखा। इन माताजी को श्रीहरि ने भुज निवास के लिए भेजा और लाधीबाई से उनके लिए सिफारिश की। लाधीबाई और माताजी दोनों एकसाथ भजन-भक्ति करने लगीं।

कुछ समय के पश्चात् लाधीबाई ने देहोत्सर्ग करने का निश्चय किया। उनके साथ में माताजी भी जाने को तैयार हो गई। लाधीबाई ने कहा, 'पहले आप धाम में चलिए; बाद में मैं भी आ रही हूँ।'

हुआ भी वैसे ही। श्रीहरि का स्मरण करते हुए पहले माताजी धाम में गई। उनके पीछे-पीछे लाधीबाई ने भी सबकी उपस्थिति में देहत्याग कर दिया!

15. दुबली भट्ट

'आइए, भट्टजी!' – कहते हुए भगवान श्रीस्वामिनारायण ने दुबली भट्ट का स्वागत किया। वह दृश्य देखकर पूरी सभा चकित रह गई। गर्व से बड़ी-बड़ी मूँछों पर हाथ फेरनेवाले, सभा में अग्र स्थान ग्रहण करनेवाले प्रतिष्ठित काठी दरबारों की सभा में, आज इस मामूली आदमी का इतना सम्मान क्यों हो रहा है? सभी के मन में यही प्रश्न हलचल मचाए हुए था।

गढ़पुर मंदिर के लिए उस समय दान लिखाया जा रहा था। सभी लोग अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार सेवा-दान लिखा रहे थे। उसी समय दुबली भट्ट ने सभा में प्रवेश किया। श्रीहरि ने उनका स्वागत किया था; इसलिए सभाजन उन्हें रास्ता दे दिए।

बुढ़ापे के कारण भट्टजी का शरीर जर्जर हो चुका था। उसी प्रकार से उनके कपड़े फटेहाल और पगड़ी चिथड़ा हो चुकी थी। काँपते हुए शरीर से भट्टजी, श्रीहरि के पास आए और पाँवों में गिर पड़े। श्रीहरि ने उन्हें उठाकर खड़ा किया। उसके पश्चात् अगले क्षण भट्टजी ने कुछ-कुछ आनन्द तथा संकोच के साथ सिर पर से अपनी पगड़ी उतारी और चिथड़ा हो चुकी पगड़ी के छोर पर बँधी हुई एक गाँठ खोली। उसमें से मिला एक पैसा उन्होंने श्रीहरि के चरणों में रख दिया।

इसी प्रकार से उन्होंने कुल तेरह गाँठें खोलीं और उसमें से मिलनेवाले कुल तेरह पैसे उन्होंने श्रीहरि के चरणों में अर्पण कर दिए।

'प्रभु! यह गोपीनाथजी की सेवा के लिए अर्पण करता हूँ।' भट्टजी ने गद्‌गद भाव से निवेदन किया।

श्रीहरि दुबली भट्ट का भाव देखकर अत्यंत ही प्रसन्न हुए और सभा में ऊँची आवाज में 'गोपीनाथ महाराज की जय...' का जयघोष करवाया।

क्षत्रिय दरबारों ने जयघोष तो किया; परन्तु आपस में एक-दूसरे को देखकर आश्चर्य व्यक्त करने लगे। सुराखाचर से रहा नहीं गया और उन्होंने श्रीहरि से पूछा, 'प्रभु! आपने यह जयघोष किस बात के लिए करवाया?'

'आज गढ़डा के मंदिर का निर्माण पूर्ण हो गया, इसलिए...!'

'लेकिन भट्टजी ने आपको ऐसा क्या दे दिया?'

'देखो, ये रहे तेरह पैसे!' श्रीहरि हाथ ऊपर उठाकर सभी को दुबली भट्ट का दान दिखाने लगे।

एक सभाजन ने पूछा, 'परन्तु इतने पैसों से मंदिर बन सकता है क्या?'

'क्यों नहीं? आप सभी के घर पर घोड़ियाँ पूँछें झटकती हैं। घर-गृहस्थी संभालते हुए किसी ने हज़ार, तो किसी ने दो हज़ार दिया है, लेकिन इस ब्राह्मण भगत के पास गाँव में न तो घर है, न ही कोई खेत। कर्मकांड करके यह अपना पेट पालते हैं। कहीं से थोड़ी-बहुत बचत हो गई थी, उसे लाकर इन्होंने मेरे चरणों में अर्पण कर दिया। भक्तों का यदि ऐसा भाव है, तो समझिए कि हमारा मंदिर पूरा हो गया।' - श्रीहरि ने बात को स्पष्ट करते हुए कहा।

दुबली भट्ट मूल रूप से चांदगढ़ के निवासी थे, परन्तु 'मोटा गोखरवाला' गाँव में कर्मकांड की वृत्ति करके जीवन-यापन करते थे। इनका वास्तविक नाम रणछोडजी महाराज था, लेकिन शरीर और व्यवहार दुर्बल होने के कारण उन्हें लोग दुबली भट्ट कहने लगे। उन्हें श्रीहरि का दृढ़ आश्रय प्राप्त था।

एकबार दुबली भट्ट अपने समधी के गाँव गए थे। वहाँ प्रात:काल होने पर नित्यनियम के अनुसार स्नान आदि करके, श्रीहरि की मूर्ति को सामने रखकर आँखें बंद करके मानसी पूजा करने लगे। उनका समधी कुसंगी था। उसने मनोविनोद करते हुए मूर्ति को हटा लिया और उसके स्थान पर जूता रख दिया। ध्यान से जाग्रत होने पर भट्टजी ने मूर्ति के स्थान पर जूता देखा।

एकाएक वे बोल उठे, 'किसकी आँखें फूट गई हैं कि मूर्ति के स्थान पर जूता रख दिया!' बस, इतना बोलते ही उनके समधी की दोनों आँखें बाहर निकल आईं और वह अन्धा हो गया। इस घटना के पश्चात् दुबली भट्ट की भक्ति का सभी को परिचय मिल गया।

एकबार श्रीहरि ने प्रसन्न होकर दुबली भट्ट को सोने की अँगूठी और अपना कड़ा प्रसादी के रूप में दिया था।[13]

16. व्रत और उत्सव

सुख-दु:ख के अंतर्द्वन्द्व से घिरे, इस जीवन में ऐहिक और पारलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए, भारत के प्राचीन आर्षद्रष्टा ऋषियों ने अनेक प्रकार के व्रतों तथा उत्सवों का आयोजन किया है। कहा गया है, *'उत्सवप्रिया: खलु मानवा:'* अर्थात् मनुष्य स्वभावत: उत्सवप्रेमी होता है। व्रत, पर्व तथा उत्सव के स्वरूप यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु उसमें एक-दूसरे के बीच बड़ी समानता दिखाई देती है।

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने भारत की इस उत्सव परम्परा को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया है। उन्होंने इन उत्सवों को धूमधाम से मनाया है और अपने सम्बंध से इन व्रतों-त्योहारों तथा उत्सवों को दिव्य बनाया है। लोकजीवन में व्रत आदि का स्वरूप विकृत हो गया था। उत्सव अर्थात् मेला। मेला वह स्थान होता है, जहाँ बड़ी संख्या में लोग इकट्ठा होकर मौज़-मस्ती उड़ाते हैं! होली में बड़ा दुराचार होता था। उन दिनों स्त्री-पुरुष के बीच की मर्यादा भी लुप्त होती जा रही थी। व्रत और त्योहार अंधविश्वासों से भरे हुए होते थे।

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने उन व्रतों और उत्सवों को रूपांतरित कर दिया। उसका नाम उन्होंनें 'समैया' रखा। इसीलिए समैया में देवदर्शन, प्रत्यक्ष मूर्ति, जिसमें अपना और अपने भक्तों का दर्शन, स्पर्श तथा कथावार्ता को प्रधानता दे दी और व्रतों-उत्सवों को निर्गुण किया।

सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी ने भी भक्तचिन्तामणि (प्रकरण-77) में कहा है, 'जेम अन्य लोक थाय भेला, तेम समजशो मा एह लीला।' अर्थात्

---

13. आज भी उनके वंशजों के पास वह प्रासादिक अँगूठी और कड़ा सुरक्षित है।

जिस प्रकार से सामान्य तौर पर लोग इकट्ठा होते हैं और बिखर जाते हैं। वैसा इन समैयाओं में नहीं, बल्कि इस समैया में –

'पण जाण्ये अजाण्ये जे जन, करशे महाप्रभुनां दर्शन।
वळी सुणशे आ लीलाचरित्र, ते नर थाशे निश्चय पवित्र ॥'

श्रीहरि उन समैयाओं में श्रीहरि जयंती, जन्माष्टमी आदि व्रतों में हज़ारों सत्संगियों के समूह को बुलाते थे। उन समैयाओं का उद्देश्य श्रीहरि ने वचनामृत में कहा है –

'हम बड़े-बड़े विष्णुयाग तथा प्रतिवर्ष जन्माष्टमी, एकादशी आदि व्रतोत्सवों का आयोजन करते हैं और उनमें ब्रह्मचारियों, साधुओं तथा सत्संगियों को एकत्र करते हैं। क्योंकि यदि कोई पापी भी हो और उसे अपने अन्त समय पर ऐसी स्मृति हो जाए, तो उसे भी भगवान का धाम प्राप्त हो जाता है।' (वचनामृत गढडा प्रथम प्रकरण-3)

अपनी मूर्ति की स्मृति के लिए भगवान श्रीस्वामिनारायण ने समैया-उत्सवों का प्रचलन किया है। उत्सवों में कथावार्ता द्वारा लोकहृदय में ज्ञान की दृढ़ता होती है। जब कभी, जहाँ-तहाँ, जैसे-तैसे चला लेने की शिक्षा उत्सवों में मिलती है। अर्थात् सादगीपूर्ण जीवन तथा सामूहिक जीवन जीने की कला, उत्सवों के दौरान ही प्राप्त होती है। सभी हरिभक्त एक स्थान पर एक-दूसरे से मिलकर बहुत प्रसन्न होते हैं। भगवान और भक्तों के जन्मोत्सव में उनकी चरित्र-लीलाओं का गायन तथा उसकी स्मृति करके मन प्रसन्न हो जाता है।

यहाँ हम व्रत, पर्व एवं उत्सवों के विभिन्न हेतुओं का विचार करेंगे :

व्रत

व्रत में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है; अन्य दो गुण गौण होते हैं। व्रत से आत्मशुद्धि होती है। शास्त्रविधि के अनुसार व्रत करनेवाले को इस लोक में सुख प्राप्त होता है और मृत्यु होने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। निष्कामभाव से भगवान की प्रसन्नता के लिए जो व्रत किया जाता है, उससे मोक्ष के साथ ही साथ भगवान के चरणारविंद की प्राप्ति होती है।

सामान्य तौर पर व्रत का अर्थ उपवास से लगाया जाता है। उपवास से शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं और उसके साथ ही साथ आत्मा की शक्ति में

वृद्धि होती है। शास्त्रों में कई प्रकार के व्रतों का विधान है। श्रीहरि जयंती, एकादशी आदि नित्यव्रत हैं। पापों के क्षय के लिए चान्द्रायण आदि व्रत हैं और वटसावित्री आदि काम्यव्रत कहे जाते हैं। अधिकमास भी एक प्रकार का व्रत ही है।

पर्व

पर्व में रजोगुण प्रधान होता है। अन्य दो गुण गौण रूप से होते हैं। पर्व निश्चित समय पर ही आते हैं। भगवान और उनके एकान्तिक संतों-भक्तों का जन्मोत्सव पर्व कहलाता है। ग्रहण, मकरसंक्रांति, तीर्थस्थान कुम्भ का मेला आदि भी पर्व हैं। व्रत मनुष्य अकेला भी कर सकता है। जब कि पर्व में प्राय: बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं। वे एक-दूसरे का परिचय प्राप्त करके समूह में आनन्द लेते हैं।

उत्सव

उत्सव एक सामान्य शब्द है। इसका प्रयोग व्रत और पर्व के लिए किया जाता है। यह एक प्रकार का लोक-त्योहार भी है, जिसे मेला कहा जाता है। होली, दशहरा आदि लौकिक उत्सव हैं। उनमें तमोगुण की प्रधानता होती है और लाखों लोग एकत्रित होते हैं।

गुजरात में नवरात्रि, बंगाल में दुर्गापूजा, महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी आदि लौकिक त्यौहार हैं।

उपरोक्त व्रत आदि का एक निश्चित समय होता है और प्रत्येक के साथ विशेष कथा भी जुड़ी हुई है। व्रतोत्सव के निर्णय के लिए भगवान श्रीस्वामिनारायण ने वैष्णवाचार्य श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र गोस्वामी श्रीविठ्ठलनाथजी द्वारा किए गए निर्णय को ही विशेष रूप से मान्य किया है। (शिक्षापत्री श्लोक : 81, 82)

श्रीहरि ने उत्सव में सर्व धर्म तथा सर्व देव के प्रति आदरभाव रखने को कहा है। (शिक्षापत्री श्लोक : 79)

एकादशी, शिवरात्रि, रामनवमी, कृष्ण जयंती, हनुमान जयंती, गणेश चतुर्थी, वामन जयंती, नृसिंह जयंती आदि उत्सवों को श्रीहरि ने विशेष रूप से मान्यता दी है । उन्होंने सभी अवतारों और देवों का आदर किया है। उन सभी अवतारों तथा देवों में अंतर्यामी रूप में वे रहते हैं; इसलिए उन सभी

को अपना स्वरूप मानकर उनसे सम्बंधित उत्सवों का आयोजन श्रीहरि ने निश्चित किया है।

श्रीहरि जयंती तथा प्रबोधिनी के उत्सवों में श्रीहरि ने सदैव के लिए सभी सत्संगियों को बिना निमंत्रण के ही आने की आज्ञा दे रखी थी। सत्संगिजीवन के पाँचवें प्रकरण में श्रीहरि ने स्वयं के मुख से 55 से 61 अध्याय तक, वार्षिक व्रतोत्सवों का विधि सहित निर्णय किया है। प्रत्येक उत्सव में भगवान को पंचामृत स्नान अवश्य कराया जाता है।

अब हम वार्षिक व्रतोत्सवों को देखें :

1. अन्नकूटोत्सव (कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा)

इस दिन से विक्रम संवत् का नया वर्ष प्रारम्भ होता है। राजा बलि ने भगवान को सबकुछ समर्पित कर दिया था; इसीलिए भगवान ने प्रसन्न होकर उक्त दिवस पर सभी भक्तों को बलि का पूजन करने की आज्ञा दी, तभी से इस दिन 'बलिपूजा' होती है।

व्रज के निवासी पहले इन्द्र की पूजा करते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, 'हमें हर प्रकार की समृद्धि यह गोवर्धन पर्वत प्रदान करता है। अत: हमें इन्द्र के बदले में गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए।' तभी से गोवर्धन पूजा प्रचलित हुई थी। गोबर का एक छोटा सा प्रतीकात्मक पर्वत तैयार करके उसकी पूजा की जाती है। इसी गोवर्धन पूजा ने बाद के दिनों में अन्नकूट का रूप ले लिया है। प्रात:काल में सभी हरिभक्त मंदिर जाते हैं और नए वर्ष पर उपासना, आज्ञा दृढ़ हो तथा तन-मन-धन से लोग सुखी रहें, ऐसा आशीर्वाद संतों से प्राप्त होता है।

प्रत्येक मंदिर में भगवान की मूर्ति के समक्ष विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का अन्नकूट सजाया जाता है। चातुर्मास में उत्पन्न हुए तथा चार महीनों के दौरान न खाए जानेवाले अन्न शाक-सब्जी भगवान ग्रहण करते हैं और बाद में भक्तजन भोजन करते हैं। प्रात:काल में गायों का पूजन किया जाता है। प्रात:काल से ही भक्तजन उपवास करते हैं। भगवान के नैवेद्य ग्रहण करने के बाद ही भोजन किया जाता है।

एकादशी व्रत

एकादशी की उत्पत्ति की कथा पुराणों में मिलती है। भगवान दस

इन्द्रियों तथा ग्यारहवें मन को अंतर्मुख करके लेटे हुए थे। उसी समय नाड़ीजंघ का पुत्र मुरदानव उनके साथ युद्ध करने आ पहुँचा। अचानक भगवान की ग्यारह इन्द्रियों के तेज़ से एक कन्या उत्पन्न हुई।

मुरदानव ने उस कन्या से कहा, 'तुम मेरे साथ विवाह कर लो।'

उस कन्या ने कहा, 'मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरे साथ युद्ध में जो विजयी होगा, उसी के साथ मैं विवाह करूँगी।'

इसके पश्चात् दोनों में युद्ध हुआ। युद्ध के दौरान कन्या ने मुरदानव का सिर तलवार से काट डाला। भगवान उस कन्या पर बहुत प्रसन्न हुए और उसे वरदान माँगने के लिए कहा। कन्या ने वरदान माँगा, 'मेरे व्रत के दिन कोई व्यक्ति अन्न न खाए। आपके तेज़ में से मेरी उत्पत्ति हुई है; इसलिए मैं तपस्विनी हूँ। अत: मेरे व्रत के दिन मन सहित जो ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, उनका आहार कोई न ले; अर्थात् विषयभोग से लोग दूर रहें।'

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने वचनामृत में कहा है कि प्रत्येक इन्द्रिय का आहार एकादशी के दिन त्याग देना चाहिए। भगवान के भक्त को यह व्रत सदैव करना चाहिए; लेकिन पशुओं की भाँति निराहार रहकर इस दिन को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। समग्र दिवस भगवान की कथा-भजन तथा कीर्तन में व्यतीत करना चाहिए। रात्रि के समय जागरण करते हुए भजन-कीर्तन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रीहरि ने कहा है : 'दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन जिन-जिन पंचविषयों में आसक्त हों, वहाँ से वापस लौटाकर ब्रह्माग्नि में उनकी आहुति कर देनी चाहिए।' ब्रह्माग्नि अर्थात् ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष। ऐसा करने से अपना स्वरूप जो ब्रह्म है, उसमें परब्रह्म का प्राकट्य हो जाता है। (वचनामृत गढडा मध्य प्रकरण-8)

शिक्षापत्री में भगवान श्रीस्वामिनारायण ने एकादशी व्रत का उद्यापन करने को कहा है। ऐसा करने से मनवांछित फल प्राप्त होता है। उद्यापन अर्थात् महापूजा करना तथा पारणा के दिन साधु-संतों को भोजन कराकर उन्हें दान देना चाहिए।

एक माह में दो एकादशी आती है। उस दिन प्रत्येक व्यक्ति को निराहार रहकर उपवास करना चाहिए। यदि कोई समर्थ न हो, तो उसे फलाहार करना चाहिए। श्रीहरि जयन्ती (रामनवमी) जन्माष्टमी, देवपोढ़ी (आषाढ़ शुक्लपक्ष)

एकादशी, प्रबोधिनी एकादशी, जलझीलणी एकादशी भादों शुक्लपक्ष – इन पाँच व्रतों में शास्त्रीजी महाराज ने सभी हरिभक्तों को निर्जला उपवास करने की विशेष आज्ञा दी है। 80 वर्ष की उम्र तक यथाविधि व्रत करने की शास्त्र की आज्ञा है। प्रत्येक एकादशी की कथा है और उसके अलग-अलग नाम भी हैं।

2. प्रबोधिनी एकादशी (कार्तिक शुक्ल एकादशी)

आषाढ़ शुक्ल पक्ष एकादशी से चातुर्मास के दौरान भगवान श्री विष्णु क्षीरसागर में शयन करते हैं, वे इसी दिन कार्तिक शुक्ल एकादशी को जाग्रत होते हैं। ऐसी कथा है कि भगवान विष्णु ने शंखासुर का आषाढ़ मास में वध किया था और उसकी थकान उतारने के लिए क्षीरसागर में शयन कर रहे थे। उस निद्रा से भगवान जाग्रत होते हैं; इसलिए भक्तजन आनंदित होकर उत्सव मनाते हैं। इसी दिन से तुलसीविवाह का प्रारम्भ होता है । इसी दिन चातुर्मास पूर्ण होता है। चातुर्मास में आरम्भ किए गए व्रत की अवधि समाप्त होती है।

सम्प्रदाय में इस दिन का अत्यन्त ही महत्त्व है। संवत् 1857 में इसी दिन भगवान श्रीस्वामिनारायण ने पीपलाणा में महादीक्षा (भागवती दीक्षा) ली थी और सहजानन्द स्वामी तथा नारायणमुनि नाम धारण किया था। पीपलाणा में उस दिवस पर अन्नकूट सजाया जाता है। इसके अतिरिक्त जेतपुर में रामानन्द स्वामी ने भगवान श्रीस्वामिनारायण को इसी दिन धर्मधुरा सौंपी थी।

श्रीहरि के पिताश्री पं. धर्मदेवजी का जन्म संवत् 1796 में इसी दिन इटार गाँव (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इस दिन ठाकुरजी को मुकुट तथा लाल रंग की वेशभूषा से सजाया जाता है। राजभोग में घेबर का नैवेद्य रखा जाता है। इस दिन धर्मदेवजी की पूजा की जाती है। इस दिन सभी संत और हरिभक्त निर्जल उपवास करते हैं। यह उत्सव प्रत्येक जगह धूमधाम से मनाया जाता है।

भगवान के जाग्रत होने पर देवगण अत्यधिक आनंदित हुए; इसलिए इस दिन को 'देवदीवाली' भी कहा जाता है। इस दिन भगवान के समक्ष भिन्न-भिन्न प्रकार की शाक-सब्जियों की छोटी सी दूकान लगाई जाती है।

3. कार्तिकी पूर्णिमा

संवत् 1798 में छपिया (उत्तर प्रदेश) में भक्तिमाता का जन्म इसी

दिन हुआ था। इसीलिए इस तिथि को रात्रि में चन्द्रोदय के समय भक्तिमाता का पूजन किया जाता है। आज ही के दिन तुलसी का जन्म हुआ था और तुलसीविवाह की समाप्ति भी आज ही के दिन होती है। इस दिन से भगवान को ऊनी (गरम) वस्त्र धारण कराया जाता है। भगवान के नैवेद्य में आज के दिन बैगन की सब्जी अनिवार्यत: रखी जाती है। बोचासण में बी.ए.पी.एस. मंदिर में यह उत्सव धूमधाम से मनाया जाता है।

रात्रि में मंदिर के चारों ओर दीपकों की पंक्तियाँ लगाई जाती हैं। भगवान के समक्ष घी का दीप जलाया जाता है। ऐसी कथा है कि प्राचीनकाल में ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करके त्रिपुरासुर अपने अत्याचार से सभी को परेशान कर रहा था। शिवजी ने उसी दिन उसका विनाश किया; इसलिए देवताओं ने आनंदित होकर दीपमाला प्रकट की थी।

इस दिन पवित्र नदियों में स्नान करने की अत्यधिक महिमा है। गंगा नदी की उत्पत्ति इसी दिन हुई थी; इसलिए गंगा में दीपों को तैरते हुए छोड़ दिया जाता है। इस दिन चन्द्रमा की स्थिति सूर्य के नीचे होती है; इसलिए सूर्य की प्रखर किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं। परिणाम स्वरूप उस समय पितृ-श्राद्ध करने की महिमा है। प्रत्येक पूर्णिमा पर भगवान को सुंदर मुकुट धारण कराया जाता है।

4. प्रमुखस्वामी महाराज जन्मजयंती (मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी)

संवत् 1978 में वड़ोदरा जिले के पादरा तहसील के चाणसद गाँव में ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज का प्राकट्य हुआ था। इस दिन भिन्न-भिन्न स्थलों पर भव्य समारोह मनाया जाता है। गीता में भगवान ने मार्गशीर्ष महीने को अपना स्वरूप कहा है : *'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्।'*

5. धनुर्मास

पवित्र मार्गशीर्ष मास में सूर्य धनराशि में प्रवेश करता है, इसलिए इस मास को 'धनुर्मास' कहते हैं। सूर्य वर्षभर में बारह राशियों पर बारी-बारी से आता है; इसलिए उन राशियों के नाम को संक्रान्ति कहते हैं। उस दिन से प्रारम्भ होकर एक मास तक प्रात:काल में जब सूर्य धनु राशि में प्रवेश करता है, तभी भगवान की मंगला आरती करके बाद में गर्म जल से स्नान कराकर, उन्हें वस्त्र धारण कराकर, समीप में अंगेठी रखकर शृंगार आरती की जाती

है। दोपहर को राजभोग नैवेद्य रखा जाता है। राजभोग में तिल-चूरमे के लड्डू, मक्खन, रोटी, बैगन का भुर्ता, मूली आदि रखा जाता है।

भगवान श्रीकृष्ण सांदीपनि ऋषि के आश्रम में धनुर्विद्या सीखने गए थे; इसलिए इस महीने में भगवान के आगे पुस्तक आदि पढ़ने के साधन रखें जाते हैं।

6. मकरसंक्रान्ति (14 जनवरी)

सूर्य जब मकर राशि में प्रवेश करता है, तब पौष मास में जनवरी की प्राय: 14 तारीख को मकरसंक्रान्ति पड़ती है। इस दिन प्रात:काल में अति शीघ्र उठकर नदी और सरोवर में स्नान किया जाता है। इस दिवस पर भगवान को तिल के लड्डू का नैवेद्य रखा जाता है। इस पर्व में दान-पुण्य की विशेष महिमा है। इसीलिए इस दिन साधु-संत झोली लेकर भिक्षादान माँगने जाते हैं।

7. पौषी पूर्णिमा

अक्षरब्रह्म श्रीगुणातीतानंद स्वामी को संवत् 1866 में डभाण में एक महायज्ञ आयोजित करके, श्रीहरि ने भागवती दीक्षा प्रदान की थी। इसीलिए आज के दिन वहाँ भव्य उत्सव मनाया जाता है।

8. वसन्तपंचमी (माघ शुक्ला पंचमी)

भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं : *ऋतूनाम् कुसुमाकर: ।* अर्थात् 'मैं ऋतुओं में वसंत हूँ।' इसी दिन संवत् 1882 में भगवान श्रीस्वामिनारायण ने शिक्षापत्री लिखी थी। संवत् 1828 में सद्गुरु ब्रह्मानन्द स्वामी का जन्म राजस्थान के खाण गाँव में आज ही के दिन हुआ था। सन् 1822 सद्गुरु निष्कुलानन्द स्वामी का जन्म जामनगर के पास शेखपाट गाँव में हुआ था। संवत् 1921 में अक्षरपुरुषोत्तम उपासना के प्रवर्तक ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज का जन्म भी इसी दिन महेलाव गाँव में हुआ था। अटलादरा में श्री अक्षरपुरुषोत्तम मंदिर में यह उत्सव मनाया जाता है और शास्त्रीजी महाराज का गुणगान किया जाता है। ऐसी कथा है कि इसी दिन भगवान श्रीकृष्ण अपने सभी सखाओं और पटरानियों के साथ गिरनार पर्वत पर अबीर-गुलाल उडाकर भव्य उत्सव मनाए थे, जिसके परिणाम स्वरूप पूरा पर्वत लाल हो गया था।

इस दिन से फाल्गुन शुक्ल 15 तक भगवान को श्वेत वस्त्र धारण

कराया जाता है। उसके साथ ही भगवान के वस्त्रों में गुलाल छिड़का जाता है। गेहूँ अथवा धान का गिरनार बनाया जाता है। बाद में उसकी पूजा की जाती है तथा आम की अमराइयों का तुर्रा बनाकर भगवान को पहनाया जाता है। उसके साथ ही जलेबी आदि मिष्ठान्नों का नैवेद्य रखा जाता है।

फाल्गुन शुक्ल 15 के पश्चात् भगवान को केसरिया वस्त्र धारण कराया जाता है। भगवान श्रीस्वामिनारायण ने जहाँ-जहाँ वसंत का उत्सव मनाया है, उन दिव्य लीलाओं का स्मरण करके भक्तजन भगवान के समक्ष आपस में रंग खेलते हैं। साधुओं-ब्रह्मचारियों को यह क्रीडा निषिद्ध है। सधवा स्त्रियाँ आपस में रंग खेलती हैं। खजूर, छुहारा, श्रीफल, शक्कर, भुने हुए चने, धनिया, पेड़े, अंगूर आदि का नैवेद्य अर्पण किया जाता है।

9. महाशिवरात्रि (माघ कृष्णा तेरस)

इस दिन रात्रि को भगवान शंकर एक शिकारी पर प्रसन्न हुए थे, ऐसी पौराणिक कथा है। अर्धरात्रि को बेलपत्र (बिल्वपत्र) तथा कनेर के पुष्पों से शिवजी की पूजा होती है। भगवान के नैवेद्य में खीर तथा वड़े अर्पण किये जाते हैं। इस व्रत के दिन फलाहार किया जाता है और भगवान को रंगबिरंगी वस्त्र धारण कराए जाते हैं।

10. पुष्पदोलोत्सव (फाल्गुन कृष्णपक्ष प्रतिपदा)

भगवान श्रीकृष्ण ने गिरनार पर्वत पर यादवों के साथ उत्सव मनाया था। यादवों ने आनन्द में आकर अर्जुन सहित श्रीकृष्ण को फूलों से गूंथे हुए फूलों के हिंडोले में प्रतिष्ठित करके, उनका पूजन किया था। इसी दिन श्रीकृष्ण-अर्जुन का नरनारायण के रूप में धर्मप्रजापति के द्वारा प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए यह दिन 'नरनारायण जयंती' के रूप में प्रसिद्ध है। इस दिन देवताओं ने धर्म के आश्रम में श्रीनरनारायण को हिंडोले में बैठाकर उन्हें झुलाया था। इन्हीं दो उद्देश्यों से इस उत्सव को दोलोत्सव कहा जाता है। इस दिन भगवान के नैवैद्य में खीर तथा बेर का भोग लगाया जाता है। भगवान को फगवा - खजूर, शक्कर, बतासे, चने आदि का भी नैवेद्य अर्पण किया जाता है।

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने सारंगपुर में हरिभक्तों को जो दिव्य 'फगवा' दिया था, उसका स्मरण करके भक्त समुदाय को प्रकट सत्पुरुष से उसी प्रकार के फगवे के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। (भक्तचिन्तामणि-64)

होली का त्योहार फाल्गुन शुक्ल की पूर्णिमा अर्थात् पुष्पदोलोत्सव के एक दिन पहले मनाया जाता है। हिरण्यकशिपु के कहने से होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठ गई, उसके बाद लोगों ने उसे जलाया। होलिका तो जल गई, लेकिन प्रह्लाद की भगवान ने रक्षा की। इस दिन ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त (भगतजी महाराज) का जन्म संवत् 1885 में सौराष्ट्र में महुवा गाँव में हुआ था। सारंगपुर में बी.ए.पी.एस. मंदिर में यह उत्सव मनाया जाता है और उसमें भगतजी महाराज का गुणगान किया जाता है। इस दिन प्रकट गुरुहरि परमपूज्य महंतस्वामी महाराज सभी को दिव्य फगवा तथा आशीर्वाद देते हैं।

11. श्रीहरि जयन्ती (रामनवमी - चैत्र शुक्ल नवमी)

परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण संवत् 1837 में चैत्र शुक्ल 9 की रात 10:00 बजे छपिया में पंडित धर्मदेवजी तथा भक्तिमाता से प्रकट हुए थे। सम्प्रदाय में इसे सर्वश्रेष्ठ उत्सव माना जाता है। अहमदाबाद स्थित अक्षरपुरुषोत्तम मंदिर में इस उत्सव का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। रात्रि को घनश्याम महाराज को पालने में झुलाकर जन्मोत्सव के कीर्तन गाए जाते हैं। यह पालना चैत्र शुक्लपक्ष चतुर्दशी तक रखा जाता है। भगवान के नैवेद्य में केसरयुक्त बिरंज का भोग लगाया जाता है। इसी दिन भगवान श्रीरामचंद्र का जन्मोत्सव भी धूमधाम से मनाया जाता है, जिसे 'रामनवमी' कहते हैं।

श्रीहरि की दिव्य चरित्रलीलाओं का स्मरण करके सर्व संत-भक्तजन इस दिन निर्जल उपवास रखते हैं।

12. चैत्री पूर्णिमा

बोचासण में बी.ए.पी.एस. मंदिर में यह उत्सव भव्य रूप से मनाया जाता है। इस दिन ठाकुरजी को बूंदी के लड्डू का भोग अर्पण किया जाता है।

13. नृसिंह जयंती (वैशाख शुक्ल चतुर्दशी)

इस दिन संध्या समय में बालभक्त प्रह्लाद के विष्णुद्रोही पिता हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए भगवान, नृसिंह का रूप धारण करके पधारे थे। भगवान का उस दिन नृसिंह के रूप में अवतार हुआ था। इस दिन ठाकुरजी को नृसिंहजी का मोहरा पहनाया जाता है। इस दिन फलाहार किया जाता है। नैवेद्य में खाजा तथा बड़ा (उड़द से बना एक व्यंजन) आदि का भोग लगया जाता है।

14. योगी जयंती (वैशाख कृष्णा 12)

ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज – स्वामीश्री ज्ञानजीवनदासजी का जन्म आज के दिन सौराष्ट्र में अमरेली गाँव में संवत् 1948 में हुआ था। यह उत्सव गोंडल स्थित स्वामिनारायण मंदिर में विशेष रूप से मनाया जाता है। इस पुण्य दिवस पर योगीजी महाराज के दिव्य चरित्र–लीलाओं का वर्णन तथा उपदेशों का मनन किया जाता है।

15. रथोत्सव (अषाढ़ शुक्ल द्वितीया)

इस दिन जगन्नाथपुरी में भगवान श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुभद्राजी की काष्ठ की मूर्तियों को रथ में बैठाकर, लाखों लोग उसे खींचते हैं। इस प्रकार से मूर्तियों की रथयात्रा निकाली जाती है। यह उत्सव सभी वैष्णव तथा स्वामिनारायण मंदिरों में मनाया जाता है। ठाकुरजी के आगे काष्ठ के अश्व सहित रथ रखा जाता है। ठाकुरजी की चल मूर्ति को रथ में प्रतिष्ठित किया जाता है। ठाकुरजी को स्वर्ण के धनुष–बाण और रक्तांबर तथा पीताम्बर धारण कराए जाते हैं। दोपहर को राजभोग आरती के समय कीर्तन–उत्सव आयोजित किया जाता है। भगवान के नैवेद्य में दही–भात–मिसरी तथा गुड़ के लड्डू अर्पण किये जाते हैं।

16. देवशयनी एकादशी (अषाढ़ शुक्ल एकादशी)

इसी दिन से चातुर्मास व्रत का प्रारम्भ होता है। पुराणों के मतानुसार भगवान श्रीविष्णु ने शंखासुर के साथ युद्ध करके, जब उसका विनाश किया, तो अत्यधिक थके होने के कारण उन्होंने क्षीरसागर में चार महीने की अखण्ड निद्रा ग्रहण कर ली। भगवान शयन करते हैं; इसलिए चार महीने तक भक्तजन भिन्न–भिन्न प्रकार के व्रत करते हैं। शिक्षापत्री में श्रीहरि ने चातुर्मास के दौरान विशेष नियम धारण करने की आज्ञा दी है।

विशेष नियम : भगवान की कथा सुने तथा पढ़े, भगवान के गुण का कीर्तन करें, पंचामृत स्नान कराके भगवान की महापूजा करें, भगवान के नाम का जप करें, भगवान के स्तोत्र का पाठ करें, भगवान की प्रदक्षिणा करें तथा भगवान को साष्टांग दण्डवत् करें। इन आठ प्रकार के नियमों में से किसी भी एक नियम को विशेष रूप से भक्तिभाव से ग्रहण करें।

चातुर्मास की अवधि तक व्रत करने के लिए जो असमर्थ हों, उन्हें

श्रावण मास के लिए एक महीने तक विशेष नियम धारण करना चाहिए। हरिभक्तजन एक समय भोजन करें। संतगण चातुर्मास के दौरान धारणा-पारणा, चान्द्रायण आदि व्रत करते हैं। धारणा-पारणा व्रत में एक दिन उपवास तथा दूसरे दिन भोजन किया जाता है। चान्द्रायण व्रत में चन्द्र की कला के अनुसार प्रतिपदा तिथि से लेकर पूर्णिमा तक एक-एक ग्रास बढ़ाते जाएँ। पूर्णिमा को 15 ग्रास लो। फिर कृष्णपक्ष में उत्तरोत्तर ग्रास को घटाते जाएँ। ऐसे एक महीने तक व्रत करें। ग्रासों की गिनती 240 होती है। इस चातुर्मास के दौरान कुछ वस्तुओं के खाने का निषेध है। जैसे गन्ना, बैंगन, मूली, मोगरी आदि भगवान को अन्नकूट में इन सारे व्यंजनों को रखने के पश्चात् भोजन करने का नियम पूर्ण हो जाता है।

17. आषाढ़ी पूर्णिमा

इस पूर्णिमा को 'गुरुपूर्णिमा' कहते हैं। वेद, महाभारत, पुराण आदि के आचार्य महर्षि व्यासजी की जन्मजयंती होने के कारण इसे 'व्यासपूर्णिमा' भी कहा जाता है। अज्ञानता से ढँके हुए लोगों के अंत:चक्षुओं को जो गुरु ज्ञानरूपी अंजनशलाका से खोल दें, उन गुरुरूप हरि की पूजा करने का भी यह दिवस है। गुरु हमें ब्रह्मरूप बनाकर परब्रह्म में जोड़ते हैं; इसलिए उन्हें हर प्रकार से निर्दोष जानकर मन, कर्म, वचन से उनमें लीन हो जाइए, वही उनका पूजन है। यह उत्सव बोचासण बी.ए.पी.एस. मंदिर में गुरुहरि के सान्निध्य में धूमधाम से मनाया जाता है।

18. हिंडोला-उत्सव

शास्त्रों में लिखा गया है : *'सेवायां लौकिकी युक्तिः स्नेहस्तत्र नियामकः'* भगवान की सेवा-पूजा में लौकिक त्योहारों आदि का समावेश करना चाहिए। इस कथन के अनुसार अषाढ़ तथा श्रावण मास में लोग झूले से झूलते हैं, अत: भगवान को भी झुलाया जाता है। अषाढ़ कृष्णपक्ष द्वितीया से श्रावण कृष्णपक्ष द्वितीया तक भगवान को भिन्न-भिन्न प्रकार के झूले में झुलाया जाता है। यह उत्सव सभी मंदिरों में मनाया जाता है। आरती करके भगवान को झूले में प्रतिष्ठित किया जाता है और भगवान की समक्ष हिंडोला के पद गाए जाते हैं।

19. जन्माष्टमी (श्रावण कृष्णपक्ष अष्टमी)

इस दिन कंस तथा शिशुपाल आदि असुरों के विनाश के लिए अवतरित हुए भगवान श्रीकृष्ण मथुरा के कारागार में आज प्रकट हुए थे। श्रीहरि के गुरु रामानन्द स्वामी का जन्म भी आज ही के दिन हुआ था। अटलादरा बी.ए.पी.एस. मंदिर में यह उत्सव मनाया जाता है। इस दिन संत एवं भक्तजन उपवास करते हैं। भगवान का पंचामृत स्नान कराकर रात्रि के 12 बजे जन्म समय की आरती उतारी जाती है। भगवान को पाँच थाल तथा पंचाजीरी अर्पण की जाती है। भगवान को पालने में प्रतिष्ठित किया जाता है और श्रावण कृष्णपक्ष 14 दिन आरती करके भगवान को पालने से उतारा जाता है।

20. गणेश चतुर्थी (भाद्रपद शुक्लपक्ष चतुर्थी)

इस दिन शिवजी के पुत्र गणेशजी का जन्म हुआ था। उसी उपलक्ष्य में मंदिरों में गणपति की मूर्ति प्रतिष्ठित करके, उनका पूजन किया जाता है। भगवान को लाल वस्त्र अर्पण करके चूरमा के 21 लड्डू का नैवेद्य रखा जाता है। रात्रि को चन्द्रमा देखने का निषेध किया गया है। श्रीहरि ने शिक्षापत्री में विष्णु, शिव, पार्वती, सूर्य तथा गणपति, इन पाँच देवों को पूज्य माना जाता है। इस दिन गणपति का पूजन करने की श्रीहरि की आज्ञा है।

21. जलझीलणी (परिवर्तिनी) भाद्रपद शुक्ल एकादशी

चातुर्मास के दौरान विश्राम कर रहे भगवान ने करवट बदली थी, इसलिए आज के दिन को 'परिवर्तिनी एकादशी' भी कहा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गोकुल से मथुरा में दही बेचने जाती हुईं राधिका आदि गोपियों से यमुना नदी में नौकाविहार करके दही की चुंगी माँगी थी, तभी से यह उत्सव मनाया जाता है। जिनमें भगवान की चलमूर्ति को जलाशय में ले जाकर पाँच बार नौकाविहार एवं पाँच बार आरती उतारी जाती है। वरुणदेव को ककड़ी का भोग अर्पण किया जाता है। उसके पश्चात् ठाकुरजी को पालकी में प्रतिष्ठित करके घर-घर पधरावनी के लिए फेरी लगाई जाती है। इस दिन सभी भक्त निर्जल उपवास रखते हैं। यह उत्सव बी.ए.पी.एस. मंदिर सारंगपुर में मनाया जाता है।

22. वामन द्वादशी (भाद्रपद शुक्लपक्ष द्वादशी)

राजा बलि ने तीनों लोक पर विजय प्राप्त कर ली थी। देवों के लिए रहने की जगह न थी; इसलिए भगवान ने इस दिन वामन का अवतार धारण

करके, अपने भक्त राजा बलि से साढ़े तीन कदम पृथ्वी माँगी थी। उनका सर्वस्व लेकर भगवान ने उन्हें पाताल में भेज दिया था। इस दिन दोपहर तक फलाहार के बाद 12 बजे ठाकुरजी की आरती उतारकर भोजन किया जा सकता है। भगवान को पिताम्बर धारण कराया जाता है और नैवेद्य में चूरमा के लड्डू निवेदित किये जाते हैं।

23. शरद पूर्णिमा (आश्विन शुक्लपक्ष पूर्णिमा)

अक्षरब्रह्म सद्गुरु गुणातीतानन्द स्वामी जामनगर जिले के भादरा गाँव में संवत् 1841 में आज ही के दिन प्रकट हुए थे। गोंडल स्थित अक्षर मंदिर में यह उत्सव मनाया जाता है। चन्द्रमा के प्रकाश में रात्रि को इस उत्सव में पाँच बार भगवान की आरती उतारी जाती है। भगवान को पंचामृत स्नान कराकर, रात्रि को दूध-चिउड़े का प्रसाद दिया जाता है। इस पूर्णिमा को 'माणेकठारी पूर्णिमा' भी कहते हैं। आज के दिन भगवान श्रीकृष्ण ने व्रज में गोपियों के साथ महारास खेला था। इस दिन रात्रि को भगवान के समक्ष रासलीला के पद गाकर भक्तजन आनन्द का अनुभव करते हैं।

24. हनुमान पूजन (आश्विन कृष्णपक्ष चतुर्दशी)

भगवान श्रीस्वामिनारायण ने शिक्षापत्री में भी इस तिथि पर हनुमानजी का पूजन करने आज्ञा दी है। इस दिन भगवान को लाल वस्त्र धारण कराये जाते हैं। नैवेद्य में फूलबड़ी, पकौड़ी, वड़ा और मालपूआ आदि अर्पण किया जाता है। इसके अतिरिक्त तेल, सिंदूर, आक के फूल तथा उड़द के वड़े से हनुमानजी का पूजन किया जाता है। रात्रि को भगवान के समक्ष दीपमाला प्रकट की जाती है। आश्विन कृष्णपक्ष 13 से तीन दिन तक लगातार भगवान के समक्ष दीपावली का उत्सव मनाया जाता है।

25. दीपावली (आश्विन कृष्णपक्ष अमावस)

विक्रम संवत् का यह अंतिम दिवस है। इस दिन लक्ष्मीपूजन किया जाता है। व्यापारी वर्ग बही-खाते का पूजन करते हैं। भारत का यह मुख्य त्योहार है। गाँव-गाँव में सभी लोग यह उत्सव मनाते हैं। भगवान ने क्षीरसागर में शयन किया था, तभी से लक्ष्मीजी असुरों से डरकर कमल में रहने लगी। इस दिन से दीप प्रकट करके उनकी वंदना की जाती है। भगवान के समक्ष दीपमाला रखी जाती है। भगवान के नैवेद्य में जलेबी, खाजा, सूतरफेनी, घेबर

आदि अर्पण किया जाता है। लोग फटाके फोड़कर आनन्द मनाते हैं।

26. पुरुषोत्तम मास - अधिक मास

जिस महीने में सूर्य की कोई संक्रांति नहीं होती, उसे अधिक मास कहते हैं। यह अधिक मास सदैव 32 महीने, 16 दिन तथा 4 घड़ी के पश्चात् आता है। पुरुषोत्तम माहात्म्य कथा में कहा गया है : बारह महीने के अधिष्ठाता देव निश्चित हैं, जब कि सर्वप्रथम बार यह अधिक मास आया, तो सभी ने उसे 'मल' अर्थात् निरर्थक मास कहकर उसकी निंदा की। उस समय यह अधिक मास भगवान की शरण में गया। भगवान ने दया करके उसे देवता का रूप दे दिया; इसीलिए इस महीने को पुरुषोत्तम मास कहते हैं; इसलिए इस महीने जो व्रत, दान आदि किए जाते हैं, उसका फल अधिक मिलता है। मंदिरों में पारायण किए जाते हैं। इस महीने में धारणा-पारणा, चांद्रायण प्रत्येक दिन एक समय भोजन आदि व्रत किए जाते हैं।

27. पाटोत्सव

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.) के तत्त्वाधान में निर्मित शिखरबद्ध मंदिरों में श्रीअक्षर-पुरुषोत्तम महाराज की प्राणप्रतिष्ठा के उत्सव, पाटोत्सव, समैया निम्नलिखित के अनुसार है। इस दिन भगवान को पंचामृत स्नान कराया जाता है, मुकुट धारण कराया जाता है और पकवान का नैवेद्य रखा जाता है।

स्वामीश्री शास्त्रीजी महाराज के वरदहस्तों से की गई मूर्तिप्रतिष्ठा :

(1) बोचासण : संवत् 1963, वैशाख कृष्णपक्ष दशमी
(2) सारंगपुर : संवत् 1972, वैशाख शुक्लपक्ष षष्ठी
(3) गोंडल : संवत् 1990, वैशाख शुक्लपक्ष दशमी
(4) अटलादरा : संवत् 2001, आषाढ़ शुक्लपक्ष तृतीया

स्वामीश्री योगीजी महाराज के करकमलों से प्रतिष्ठित मंदिर :

(5) गढ़पुर : संवत् 2007, वैशाख शुक्लपक्ष दशमी
(6) अहमदाबाद : संवत् 2018, वैशाख शुक्लपक्ष सप्तमी
(7) भादरा (गुणातीतनगर) : सं. 2025, वैशाख शुक्लपक्ष षष्ठी

प्रमुखस्वामी महाराज के वरदहस्तों से किए गए प्रतिष्ठित मंदिरः

(8) मुम्बई(दादर) : संवत् 2040, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष अष्टमी

(9) महेसाणा : संवत् 2051, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष अष्टमी
(10) लंदन : संवत् 2051, श्रावण कृष्णपक्ष दशमी
(11) अमलनेर : संवत् 2052, पौष कृष्णपक्ष द्वितीया
(12) सुरेन्द्रनगर : संवत् 2053, कार्तिक कृष्णपक्ष द्वादशी
(13) सूरत : संवत् 2053, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष सप्तमी
(14) नडियाद : संवत् 2054, माघ कृष्णपक्ष दशमी
(15) नवसारी : संवत् 2054, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष सप्तमी
(16) राजकोट : संवत् 2055, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष सप्तमी
(17) महेलाव : संवत् 2055, माघ शुक्लपक्ष पंचमी
(18) नैरोबी : संवत् 2055, श्रावण कृष्णपक्ष तृतीया
(19) तीथल : संवत् 2056, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष सप्तमी
(20) आणंद : संवत् 2057, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष सप्तमी
(21) सांकरी : संवत् 2057, वैशाख कृष्णपक्ष दशमी
(22) धोलका : संवत् 2058, कार्तिक शुक्लपक्ष दशमी
(23) भरूच : संवत् 2058, कार्तिक कृष्णपक्ष नवमी
(24) दिल्ली : संवत् 2059, माघ शुक्लपक्ष पंचमी
(25) ह्युस्टन : सं. 2060, अधिक श्रावण शुक्लपक्ष अष्टमी
(26) शिकागो : सं. 2060, अधिक श्रावण कृष्णपक्ष अष्टमी

इसके अतिरिक्त नवसारी, भावनगर, जूनागढ़, एटलान्टा, टोरन्टो, गुणातीतनगर – भादरा, लीमडी, बोडेली, गोधरा, नागपुर, सेलवास, हिम्मत-नगर, कोलकाता, महुवा, जामनगर, धारी, लॉस एन्जलस, रोबिन्सविल आदि देश-विदेश के अनेक शहरों में भी नए शिखरबद्ध मंदिरों का निर्माण प्रमुखस्वामी महाराज के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ है और अभी नए मंदिरों का निर्माण जारी है।

17. माताजी

मछियाव गाँव की एक पुत्री का उदेपुर में विवाह किया गया था। उससे मिलने के लिए मछियाव के एक मूलजी नामक ब्राह्मण उदेपुर आए। मटका (पीहर में भेजी जाती मिठाई) लेकर आए थे, इसलिए उन्हें अंत:पुर

में प्रवेश करने की अनुमति मिली। वहाँ उन्होंने स्त्रियों से श्रीहरि की महिमा की बातें की। यह बात उदेपुर की महारानी झमकूबाई के कानों तक पहुँची।

मूल रूप से वागड़ गाँव की झमकूबाई अत्यन्त ही संस्कारी थी। उदेपुर के राजा के साथ उनका विवाह हुआ था, लेकिन राजा अत्यन्त ही आसुरी प्रकृति का था। वह अभक्ष्य वस्तुओं को खाता और रानी से भी खाने का हठ करता था। उस त्रास का अंत लाने के लिए झमकूबाई ने राज्य का वैभव छोड़कर, प्रकट भगवान के पास चले जाने का निश्चय किया।

झमकूबाई का शरीर स्त्री का था, परन्तु उनकी आत्मा अत्यन्त ही साहसी थी। रात्रि के समय साड़ियों को जोड़कर उन्होंने रस्सा बनाया और महल में से छिपकर नीचे उतर गई। बाद में पानी के नाले के सहारे वे महल

से बाहर आ गई।

आगे जाने पर उजाला हुआ। गढडा जाने का मार्ग उन्हें मालूम नहीं था। उसके अतिरिक्त उन्हें खोजने के लिए पीछे से घुड़सवार आ पहुँचे, इस भय से वह एक खाई में पड़े हुए मरे ऊँट के कंकाल में जाकर स्वयं को छिपा लिया। प्रात:काल होने पर घुड़सवार रानी को खोजने निकले। झमकूबाई ने ऊँट के कंकाल में से घुड़सवारों को देखा। इसलिए भयवश उस दुर्गंधपूर्ण स्थिति में भी कंकाल में ही छिपी रही। तीन दिन के बाद जब घुड़सवार वापस लौटे तो झमकूबाई कंकाल में से निकलकर आगे चल पड़ी। मार्ग में एक बनजारे का काफिला मिला और उन लोगों के साथ वे वडनगर तक गईं। तालब के किनारे पर उन्हें स्वामिनारायण का भजन कर रहीं स्त्रियों का एक संघ मिला। उन्हीं के साथ वे गढडा पहुँच गईं।

भगवान श्रीस्वामिनारायण का दर्शन करते ही झमकूबाई की आत्मा में परम शांति की अनुभूति हुई। उस ब्राह्मण ने जो-जो बातें कही थीं, उसे स्वयं की आँखों से देखकर उनके अंतर्मन में अत्यधिक आनन्द हुआ।

'प्रभु! मुझे सांसारिक जीवन नहीं बिताना है; मुझे आपकी भक्ति करनी है।' झमकूबाई ने श्रीहरि के चरणों में गिरकर प्रार्थना करते हुए कहा।

अंतर्यामी श्रीहरि झमकूबाई को अच्छी तरह पहचानते थे। उनकी ऐसी श्रद्धा और भक्ति देखकर वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। श्रीहरि ने उन्हें वर्तमान नियम धारण कराकर अपना आश्रित बनाया और महल में जीवुबाई के साथ रहकर सेवा करने की आज्ञा दी।

झमकूबाई क्षत्रिय होने के बावजूद अत्यन्त ही निर्मानी स्वभावयुक्त तथा निष्ठावान थी। जीवुबाई उन्हें पहचानती नहीं थी, इसलिए वह झमकूबाई से कूड़ा-करकट और गोबर उठाने का काम कराती थी। खाने के लिए रोटी देती थी। महल में झाडू लगाने, श्रीहरि तथा संतों के लिए पानी आदि लाने का कार्य झमकूबाई दौड़-दौड़कर करती थीं।

एक बार झमकूबाई महल में पशुओं के मलमूत्र और गोबर उठाने का काम कर रही थीं कि उसी समय भगवान श्रीस्वामिनारायण वहाँ आ पहुँचे। श्रीहरि ने वहाँ से गुज़रते हुए वह देखा और जीवुबाई को बुलाकर पूछा, 'तुम इन्हें पहचानती हो?'

'नहीं प्रभु!' – जीवुबाई ने कहा।

'इनके घर में तुम्हारे जैसी तो दासियाँ हैं। भारी समृद्धि एवं राजवैभव छोड़कर यह भगवान को भजने के लिए यहाँ आई हैं। ये उदेपुर की महारानी हैं! इनसे यह सब काम मत कराओ?' श्रीहरि ने जीवुबाई को मीठी झिड़की दी, तो उन्होंने क्षमा-याचना कर ली।

श्रीहरि की आज्ञा से झमकूबाई ने सिर मुँडवाकर सफ़ेद वस्त्र धारण कर लिया। श्रीहरि ने उनका नाम 'माताजी' रखा।

एकबार श्रीहरि ने झमकूबाई को वरदान देते हुए कहा था, 'मैं तुम्हारे जीवन के अंतिम क्षण में अक्षरधाम में ले जाने के लिए आऊँगा।'

बाद में उन्होंने झमकूबाई को लाधीबाई के साथ भुज में भेज दिया।

भुज में लाधीबाई तथा माताजी एक ही कमरे में रहती थीं और श्रीहरि का ध्यान-भजन करती थीं। श्रीहरि उन्हें सदैव दर्शन देते थे। माताजी तथा लाधीबाई ने एक साथ ही शरीर त्याग किया था। एक ही चिता में दोनों का अग्निसंस्कार किया गया था। इन दोनों मुक्तात्माओं को श्रीहरि अपने साथ अक्षरधाम में ले गए।[14]

18. राणा राजगर

काठियावाड में गोलिड़ा नामक एक गाँव है। उस गाँव में चार भाई रहते थे। जिनके नाम भीम, वशराम, राघव और राणो थे। जाति से वे राजगुरु ब्राह्मण थे। उनके पिताजी ने जगन्नाथपुरी से द्वारिका तक की यात्रा दण्डवत् करते हुए की थी। एक बार उस गाँव में रामानन्द स्वामी पधारे और उस ब्राह्मण को समझाते हुए बोले, 'प्रकट भगवान से मिले बगैर कल्याण नहीं होगा।'

यह सुनकर उसने कहा, 'इस कलियुग में प्रकट भगवान कैसे मिलेंगे?'

'तुम्हारे पुत्र द्वारा प्रकट भगवान से मिलने का योग है।' ऐसी वाणी बोलकर रामानंद स्वामी दूसरे गाँव में चले गए।

बहुत समय के पश्चात् भगवान श्रीस्वामिनारायण विचरण करते हुए

---

14. माताजी जिस कमरे में ध्यान करती थीं, वह कमरा आज भी भुज में सुरक्षित है और वह 'माताजी की ओरडी' (कुटीर) के नाम से विख्यात है।

गोलिडा गाँव पधारे। श्रीहरि के प्रथम दर्शन होते ही, चारों भाइयों के पूर्व का स्नेह जाग्रत हो उठा। अपने घर श्रीहरि की पधरावनी कराकर, उन्हें भोजन कराया और वर्तमान धारण करके वे श्रीहरि के दृढ़ आश्रित हो गए।

'तुम लोग कोई वरदान माँगो।' – श्रीहरि ने प्रसन्न होकर कहा।

'हमारे गाँव अथवा गाँव की सीमा पर किसी को यमराज लेने न आएँ!' – भाइयों ने विनयपूर्वक वर माँगा।

बाद में धीरे-धीरे पूरा गाँव सत्संग के रंग में रंग उठा, लेकिन एक विकृत मानसिकता वाला व्यक्ति सत्संग का द्वेषी था। उसके अंतकाल में यम का टोला उसे लेने आया, परन्तु ज्यों ही यमदूत सीमा पर पहुँचे कि जलने लगे। कुछ यमदूतों ने कहा, 'इस गाँव में यमदूतों के प्रवेश पर भगवान श्रीस्वामिनारायण का प्रतिबंध है, हम वहाँ नहीं जा सकेंगे।'

यह सुनकर कुछ यमदूतों ने कहा, 'कुसंगी को ले जाने में कोई बाधा नहीं है।'

वे चारों भाई बारी-बारी से गाँव की रखवाली करते थे, आज भीम और राणा की बारी थी। उन्होंने यम को देखा, तो उसे वापस लौट जाने के लिए कहा। यमदूत जब नहीं माने, तो वे दोनों भाइयों ने लाठियाँ लेकर यमदूतों का पीछा करके उन्हें खदेड़ दिया। भगवान के प्रति उनकी निष्ठा का

ही यह फल था कि यमदूत भाग गए।

राणा के दो भाई राघव और वशराम साधु होने के लिए तैयार हो गए, परन्तु उनकी माताजी मना कर रही थी। तब राणा ने अपनी माताजी को समझाया कि 'तुम भाइयों को अनुमति दे दो, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।'

इस प्रकार दोनों भाइयों को श्रीहरि ने दीक्षा प्रदान की और उनका नामाभिधान करते हुए क्रमशः राघवानन्द और विश्वात्मानन्द नाम रखे। वे दोनों 'यम-खदेड़िया साधु' अर्थात् यम को खदेड़नेवाला साधु के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

एक बार राणा बीमार पड़े और जब वे शरीर त्यागने के लिए तैयार हुए, तो उनकी माताजी ने कहा, 'बेटा! तू चला जाएगा, तो मेरा क्या होगा?'

'मैं बारहवीं के दिन तुम्हें लेने आऊँगा।' – राणा ने अपनी माताजी को इस प्रकार से वचन दिया।

श्रीहरि विमान लेकर राणा को लेने आए। उन्हें देखकर राणा ने सभी से पूछा और कहा कि 'जिसे मेरे साथ धाम में चलना हो, वे चलें।' यह सुनकर उनका पुत्र उनके साथ ही अक्षरधाम में गया।

बारहवीं के दिन राणा श्रीहरि को साथ में लेकर अपनी माँ को ले जाने के लिए आ पहुँचे। वह दर्शन जब अधिकतर लोगों ने किया, तो सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ। राणा राजगर के पास ऐसी ही निष्ठा और श्रीहरि का बल था।[15]

उनका यह प्रभाव देखकर हमें भी प्रेरणा लेनी चाहिए। हमें भी प्रकट भगवान तथा सत्पुरुष की प्राप्ति की ऐसी खुमारी तथा लगन होनी चाहिए।

19. वचनामृत

वचनामृत का तात्पर्य है – वचनरूपी अमृत! इस अमृत का पान करने से हम अमर हो जाते हैं और पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। हम अक्षरधाम के पात्र बन जाते हैं। अर्थात् हमें अक्षरधाम मिलता है। जिस प्रकार से 'गीता' भगवान श्रीकृष्ण की वाणी है, उसी प्रकार से 'वचनामृत' परब्रह्म भगवान श्रीस्वामिनारायण की वाणी है। इससे बड़ा शास्त्र कोई है ही नहीं। इसमें वेद, इतिहास, पुराण आदि शास्त्रों का निष्कर्ष है।

---

15. श्रीजीमहाराज ने वचनामृत लोया प्रकरण-3 में राणा राजगर की प्रशंसा की है।

वचनामृत में श्रीहरि के ही शब्द हैं : 'यह जो बात हमने आपको बतायी है, वह समस्त शास्त्रों का सिद्धान्त है और, अनुभव में भी यही बात हमें सुदृढ़ है, तथा हमने प्रत्यक्षरूप से देखकर ही आपको यह बात बतायी है।' (वचनामृत गढडा मध्य प्रकरण-13)

भगवान स्वामिनारायण ने तीस साल तक सत्संग में विचरण किया था। वे जिस गाँव में प्रश्नोत्तर तथा प्रेरणा-वचनों का लाभ देते, उसे संतवृंद लिख लेते थे। उसके पश्चात् गोपालानन्द स्वामी, नित्यानन्द स्वामी, मुक्तानन्द स्वामी और शुकानन्द स्वामी जैसे विद्वान् संतों ने श्रीहरि की वाणी को यथार्थ रूप में संकलित किया।

वचनामृत गढडा प्रथम प्रकरण 6 : विवेकी-अविवेकी का

संवत् 1876 में मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी (25 नवम्बर, 1819) को श्रीजीमहाराज श्रीगढ़डा स्थित दादाखाचर के राजभवन में श्वेत वस्त्र धारण करके विराजमान थे। उनके मुखारविन्द के समक्ष सभा में स्थान-स्थान के मुनि एवं हरिभक्त उपस्थित थे।

तब श्रीजीमहाराज ने कहा कि 'इस सत्संग में जो मुमुक्षु विवेकी होता है, वह तो दिन-प्रतिदिन अपने में अवगुण देखता है तथा भगवान और उनके भक्तों में उसे गुण ही गुण दिखायी पड़ते हैं। भगवान एवं साधु उसके हित के लिए जो कठोर वचन कहते हैं, उन्हें वह अपने लिए हितकर समझता है और दु:खी नहीं होता, ऐसा भक्त दिन-प्रतिदिन सत्संग में महत्ता को प्राप्त करता है; और जो अविवेकी होता है वह ज्यों-ज्यों सत्संग करता है, त्यों-त्यों अपने में गुण देखता है; और जब भगवान एवं सन्त उसके दोष दिखाकर बात करते हैं, तब वह अभिमानवश होकर सन्त की बातों को उलटा समझकर सन्त में ही अवगुण देखने लगता है।

ऐसे अविवेकी की भक्ति दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है और सत्संग में वह प्रतिष्ठाहीन हो जाता है। अत: अपने गुणों के अभिमान का त्याग करके, शूरवीरता से भगवान एवं भगवान के सन्त में दृढ़ विश्वास रखे, तो उसका अविवेक दूर हो जाता है और सत्संग में वह महानता प्राप्त करता है।'

॥ इति वचनामृतम् ॥6॥

विवेक और अविवेक के विषय में सामान्य तौर पर हमारी व्याख्या यही होती है कि जिन्हें बोलने, चलने, खाने-पीने आदि बातों में ध्यान रहता है, वे विवेकी होते हैं और जिन्हें इन सब बातों की चिंता न हो, वे अविवेकी होते हैं।

परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से विवेक और अविवेक की व्याख्या इससे सर्वथा भिन्न है। भगवान श्रीस्वामिनारायण ने वचनामृत में समझाते हुए कहा है कि स्वयं में अनेक अवगुण हों, परन्तु मनुष्य उस ओर नहीं देखता। इसके विपरीत दूसरों में यदि थोड़ा सा भी अवगुण हो, तो उसे बहुत बड़ा करके दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

सूरदासजी ने कहा है : *'मो सम कौन कुटिल, खल, कामी'* अर्थात् मेरे समान कुटिल, कामी, दुष्ट और कौन हो सकता है! सूरदासजी को अपना ही अवगुण दिखाई देता है।

यदि हमारे अविवेक को दूर करने के लिए भगवान का साक्षात्कार किए हुए साधु हमें डाँटें, रोकें और मार्गदर्शन दें, तो हमें उनका अवगुण नहीं देखना चाहिए। हमें यही समझना चाहिए कि वे हमारे भले के लिए कहते हैं। इस प्रकार से निर्मानी होकर संत के वचन में विश्वास रखा जाए, तो अविवेक दूर होता है और सत्संग में वृद्धि होती है।

20. प्रभाशंकर और देवराम

मंडप तैयार हो गया है; वरयात्रा निकलने के उपलक्ष्य में ढोल और तांसे बज रहे हैं। उधर बारात निकलने की तैयारी हो रही है; बैलगाड़ियाँ जोड़ी और सजाई जा रही हैं। सज-धजकर बैठे हुए वरराजा के हाथ में अचानक एक हरकारा पत्र रखकर चला जाता है।

पत्र पढ़कर वरराजा ने कुछ निर्णय किया और अपने सगे-सम्बंधियों को बुलाकर कहा, 'यह विवाह स्थगित रहेगा। श्रीहरि का पत्र है और मुझे वड़ताल बुलाते हैं।'

प्रभाशंकरजी का ऐसा अनपेक्षित निर्णय सुनकर सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गए! माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया; परन्तु वह अपना निर्णय बदल न सके। श्रीहरि की आज्ञा के सामने दुनिया की सारी वस्तुएँ उनके

लिए तुच्छ थीं।

'विवाह तो पुनः होगा, परन्तु श्रीहरि की आज्ञा पुनः नहीं प्राप्त होगी।' इतनी बात कहकर वे वड़ताल को प्रस्थान कर गए।

वड़ताल पहुँचकर उन्होंने श्रीहरि को दण्डवत् प्रणाम किया। अंतर्यामी श्रीहरि ने उनसे पूछा, 'प्रभाशंकर! जब तुम्हें हमारा संदेश मिला, तो तुम क्या कर रहे थे?'

प्रभाशंकर ने स्पष्ट रूप से सारी बातें श्रीहरि को बताईं। उसे सुनकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और बोले, 'प्रभाशंकर! तुम सच्चे भक्त हो।'

पीपलाव गाँव के प्रभाशंकरजी बचपन से ही भगवान की भक्ति में निमग्न रहते थे। धर्म और नियम के पालन में रुचि तथा लगाव रखते और कथावार्ता अवश्य सुनते थे।

संवत् 1866 में जिस समय भगवान श्रीस्वामिनारायण ने डभाण में महायज्ञ का आयोजन किया था, उस समय भी ऐसी ही घटना घटित हुई थी। उस समय पीपलाव में प्रभाशंकरभाई का विवाह आयोजित था, उसी दौरान श्रीहरि की कुंकुमपत्रिका आई। प्रभाशंकर डभाण जाने के लिए तैयार हो गए। माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया, किन्तु प्रभाशंकर यही कहते थे : 'बापा! विवाह तो अगले साल भी हो जाएगा; परन्तु श्रीहरि डभाण में दुबारा यज्ञ नहीं करनेवाले हैं।'

ऐसी ही ऊँची समझदारी रखनेवाले तथा ज्ञानी भक्त देवरामभाई भी थे। वे कच्छ में भुजनगर के निवासी थे। उनकी पत्नी धाम में चली गई, तो सभी सगे-सम्बंधी रोने लगे, परन्तु देवरामभाई को कोई शोक नहीं हुआ! वे यही सोचते थे कि श्रीहरि की मूर्ति के अतिरिक्त सबकुछ व्यर्थ है।

श्रीहरि की मूर्ति में ही उनका अनन्य प्रेम था। धार्मिक विधि के अनुसार सगे-सम्बंधियों ने देवरामभाई को स्नान कराया। उस समय देवराभाई ने कहा, 'यदि कोई भी मर गया हो तो कहना, इसी समय उसका भी स्नान कर लूँ।' ऐसा अन्य कोई नहीं बोल सकता।

21. सच्चिदानन्द स्वामी

सभी लोग उन्हें 'मोटाभाई' (बड़े भैया) कहकर बुलाते थे। उनका मूल नाम था - 'दाजीभाई'। पूरे पाँच हाथ ऊँचे तथा सुगठित शरीर उन्हें उपहार में मिला था। जाति से क्षत्रिय-वाघेला थे। जामनगर के पास मोडा गाँव के निवासी, वह भक्तराज जड़भरत के समान हमेशा उन्मत्त दशा में ही रहते थे। घर के लोगों को उनका भक्तिमार्ग अच्छा नहीं लगता था।

एक बार उन्हें भगवान श्रीस्वामिनारायण का दर्शन हुआ और उस प्रथम दर्शन से ही उनकी वृत्ति श्रीहरि के मनोहर स्वरूप में स्थिर हो गई। साधु होने की उनकी इच्छा तीव्र हो उठी। परिणामस्वरूप वे बार-बार भागकर भगवान श्रीस्वामिनारायण के पास चले जाते थे। परिवार के सदस्यों ने उनके पाँव में बेड़ी डालकर एक कमरे में बंद कर दिया, परन्तु मोटाभाई श्रीहरि का स्मरण करने लगे। श्रीहरि पधारे और बेड़ियाँ तोड़कर उन्हें गढ़पुर ले गए।

'मोटाभाई' को साधु-दीक्षा प्रदान करके, श्रीहरि ने उनका नाम 'सच्चिदानन्द' रखा। सच्चिदानन्द स्वामी को श्रीहरि पर अत्यधिक स्नेह था। वे निरन्तर अपनी वृत्ति श्रीहरि में स्थिर रखते थे। जिस समय श्रीहरि का वियोग होता था, उस समय उन्हें बड़ा कष्ट होता था। कईबार तो श्रीहरि से अलग होते ही वे बेहोश हो गए थे।

श्रीहरि की आज्ञा से उन्होंने राधावाव का निर्माण कराया और वहाँ पर उन्होंने बगीचा भी लगाया। बगीचे में से फूल का हार, गजरा आदि शृंगारों

को गूंथकर वे प्रतिदिन श्रीहरि के लिए लाते थे।

जैसा प्रेम, वैसी ही प्रतिक्रिया। वे हमेशा कहते थे कि 'यदि कोई मेरा पाँव काट डाले, तो भी मैं घिसटते हुए चलकर वहाँ जाऊँ, जहाँ साधु की जूठन रखी जाती है। जूठन खाकर सत्संग में पड़ा रहूँ, उसे कभी न छोड़ूं।'

चातुर्मास में श्रीहरि सभी संतों को नियम प्रदान करते थे। उस समय सच्चिदानंद स्वामी ने ऐसा नियम लिया कि 'चार महीने तक शयन नहीं करना है और रात्रि को पालथी मारकर जंघा पर दो पत्थर रखकर श्रीहरि का ध्यानभजन करता रहूँगा।'

एक बार अकाल के समय सभी भक्तजन श्रीहरि से बरसात होने के लिए विनती की। श्रीहरि ने कहा, 'इस बार इन्द्र क्रोधित हो गए हैं; इसलिए वर्षा नहीं होगी।'

सभी हरिभक्त निराश हो गए और वे सच्चिदानन्द स्वामी के पास पहुँचे। सच्चिदानंद स्वामी ने उन लोगों से कहा, 'श्रीहरि की मर्ज़ी के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। वे नाराज़ हो जाएँगे।'

हरिभक्तों ने स्वामीजी से बहुत विनती की और यह भी कहा, 'यदि श्रीहरि नाराज होंगे, तो आपका अपराध हम अपने सिर पर ले लेंगे; परन्तु आप हमारे दु:ख की ओर देखिए।'

स्वामी दयालु स्वभाव के थे। उन्होंने समाधि लगाकर स्वर्ग में इन्द्र को लात मारकर जगाया तथा बरसने के लिए कहा। फलस्वरूप भारी बरसात हुई!

यह समाचार जब श्रीहरि के पास पहुँचे, तो उन्होंने नाराज होकर सच्चिदानन्द स्वामी को विमुख कर दिए। उस समय स्वामी घेला नदी के सामनेवाले किनारे पर बैठकर भजन कर रहे थे। एक दिन बीत जाने पर दूसरा भी दिन बीत गया। परिणामस्वरूप उन्हें प्यास बहुत लगी, परन्तु वे भजन करना नहीं छोड़े।

उधर अक्षरओरडी में श्रीहरि प्यास से व्याकुल हो उठे। ब्रह्मचारीजी ने उन्हें पानी दिया, लेकिन श्रीहरि की प्यास बुझी नहीं। बाद में उन्होंने कहा, 'जाओ, उन प्यासे को पानी पिलाओ।'

रतनजी और मियांजी समझ गए। यहाँ से वे श्रीहरि की प्रसादी का जल ले गए और घेला के किनारे बैठे हुए सच्चिदानन्द स्वामी को जल

पिलाए। सच्चिदानंद स्वामी के जल ग्रहण करते ही श्रीहरि की प्यास मिट गई। श्रीहरि के साथ उनकी अटूट एकता थी। बाद में श्रीहरि ने सच्चिदानंद स्वामी को वापस बुला लिया।

श्रीहरि के अंतिम समय में सच्चिदानंद स्वामी उनसे पहले ही नाड़ी-प्राण त्यागकर धाम में चले गए!

'आप शरीर में वापस जाइए।' - श्रीहरि ने आज्ञा दी।

'मैं शरीर में नहीं रह सकता। आपका वियोग सहन नहीं होगा।' स्वामी ने श्रीहरि से बहुत विनती की, तो उन्होंने उन्हें प्रसादी का जल दिया तथा छः महीने में धाम ले जाने का वचन दिया। उसके बाद स्वामीश्री शरीर में वापस आ गए, लेकिन अन्न-जल का त्याग पहले जैसा ही चलता रहा। कुछ समय के बाद श्रीहरि उन्हें धाम में ले गए।

22. सुभाषित

अयं निजः परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥1॥

'यह मेरा है अथवा दूसरे का है' ऐसे विचारों की उत्पत्ति छोटे मनवालों के मन में होती है, परन्तु जो लोग उदार चरित्रवाले हैं, उनके लिए सारी पृथ्वी एक परिवार है। (1)

गंगा पापं, शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं, तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशयाः ॥ 2 ॥

गंगा पाप का हरण करती है, चंद्रमा ताप को दूर करता है, कल्पवृक्ष दरिद्रता का हरण करता है, लेकिन महान सत्पुरुष पाप, ताप और दरिद्रता, तीनों को नष्ट कर देते हैं। (2)

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् ॥ 3 ॥

महापुरुषों के मन, वचन तथा कर्म में एकता होती है; जब कि दुष्ट पुरुषों के मन, वचन और कर्म में भिन्नता होती है। (3)

प्रसंगमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ 4 ॥

(भागवत : 3-25-20)

जीव को अपने सम्बंधियों तथा स्वजनों के प्रति जैसी दृढ़ आसक्ति है, वैसी ही आसक्ति यदि भगवान के परम एकान्तिक साधु के प्रति हो, तो जीव के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है। (4)

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ 5 ॥

(भागवत : 10-84-11)

जल से भरे तीर्थस्थल और मिट्टी अथवा शिला से निर्मित देवमूर्तियाँ, सेवन करनेवाले को बहुत लंबे समय पर पवित्र करते हैं; जब कि साधुपुरुष केवल दर्शनमात्र से ही पवित्र करते हैं। (5)

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ 6 ॥

अपनी इन्द्रियों को अच्छी तरह से संयमित रखनेवाला व्यक्ति श्रद्धावान् होकर, तत्पर बना रहे तो वह ज्ञान को प्राप्त करता है और फिर वह कुछ ही समय में परमशांति अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करता है। (6) (गीता 4-39)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ 7 ॥

तुम सभी धर्मों की शरण छोड़कर, मात्र मेरी ही शरण प्राप्त कर लो।

मैं तुमको सभी पापों से मुक्त कराऊँगा। तुम्हें शोक करने की आवश्यकता नहीं है।(7) (गीता 18-66)

कार्यं न सहसा किंचित् कार्यो धर्मस्तु सत्वरम्।
पाठनीयाऽधीतविद्या कार्यः संगोऽन्वहं सताम्॥8॥

(शिक्षापत्री : 36)

बिना सोचे समझे कोई भी काम तत्काल न करें और धर्मसम्बंधी जो कार्य हैं, उन्हें तत्काल करें। जो विद्या स्वयं पढ़े हों, उसे दूसरे को पढ़ाएँ और नित्य प्रति साधु का सत्संग करें। (8)

धर्मेण रहिता कृष्णभक्तिः कार्या न सर्वथा।
अज्ञ-निन्दाभयान्नैव त्याज्यं श्रीकृष्णसेवनम्॥9॥

(शिक्षापत्री : 39)

भगवान की भक्ति भी यदि धर्मरहित हो, तो ऐसी भक्ति कभी नहीं करनी चाहिए। मूर्खों की निंदा से भयभीत होकर भक्ति का त्याग कभी न करें। (9)

अपि भूरिफलं कर्म धर्मापेतं भवेद् यदि।
आचर्यं तर्हि तन्नैव धर्मः सर्वार्थदोऽस्ति हि॥10॥

विशेष फल देनेवाला कार्य भी यदि धर्मरहित हो, तो ऐसा आचरण कभी न करें। जो धर्म है, वह हर प्रकार का पुरुषार्थ प्रदान करता है; इसीलिए किसी फल के लोभ में धर्म का त्याग न करें। (10)

(शिक्षापत्री : 73)

23. जालमसिंह बापू

'स्वामी! इसमें तो जान का खतरा है।' मुंडन कराते हुए श्रीहरि ने मुक्तानन्द स्वामी से कहा।

लीमडी के समीप शियाणी गाँव से श्रीहरि तावी पधारे। वहाँ गाँव की सीमा पर एक नाई से श्रीहरि मुंडन करा रहे थे, परन्तु नाई का हाथ भारी था।

उसे देखकर समीप में ही खड़े जालमसिंह बापू ने श्रीहरि से प्रार्थना करते हुए कहा, 'प्रभु! आप आज्ञा दीजिए, तो मैं इसी समय अपने गाँव से कोई अच्छा नाई बुला लाऊँ।'

श्रीहरि ने अपनी सहमति प्रकट की, तो बापू जालमसिंह घोड़ी पर

सवार होकर देवलिया गाँव निकल पड़े।

तावी से देवलिया की दूरी तीन कोस की है। श्रीहरि ने सोचा कि 'जालमसिंह के आने में देर होगी, इससे तो यह बेहतर है कि हम ही देवलिया चले जाएँ।' लगभग आधे मार्ग पर आकर वे डोली तलावड़ी पहुँचे और वहाँ के पीपल वृक्ष के नीचे उन्होंने सभा का आयोजन किया।

उधर जालमसिंह बापू ने देवलिया पहुँचकर नाई को बुलाया। नाई अपने औजारों को थैले में डाला और चलने के लिए तैयार हो गया।

बापू ने नाई को अपनी घोड़ी के साथ दौड़ने के लिए कहा, किन्तु नाई के बगल में थैला था; भला वह दौड़ कैसे सकता था? बापू को शीघ्र पहुँचना था।

उधर श्रीहरि उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अपने इष्टदेव के लिए क्या नहीं किया जाता? बापू ने नाई का थैला अपनी बगल में रखा और कहा, 'यह पायदान पकड़कर मेरी घोड़ी के साथ दौड़ो।'

जब वे आधे मार्ग पर पहुँचे, तो उन्होंने श्रीहरि को सभा में बिराजमान देखा। वे घोड़ी से उतरकर सीधे श्रीहरि के पास आए और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। इतने में पूर्णानन्द स्वामी भी वहाँ आकर खड़े हो गए। वे अपनी धीमी चाल के कारण श्रीहरि के पास पहुँचने में पिछड़ गए थे। सभा

में काफ़ी भीड़ थी, जिसके कारण पूर्णानन्द स्वामी को बैठने के लिए कोई उचित स्थान न मिला।

अंतर्यामी श्रीहरि इसे जानकर बोले, 'किसी ने मान को देखा है?' श्रीहरि की बात सुनकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। श्रीहरि ने पुनः कहा, 'इस गाँव के जमींदार जो सदैव मान में रहते हैं, वे बगल में नाई का थैला लेकर निर्मानी बनकर खड़े हैं और यह संत हैं, जिन्हें निर्मानीपन से रहना है, ये मान चाहते हैं।' कहकर श्रीहरि ने स्वामी की तरफ उंगली दिखाई।

मानभंग होने के कारण पूर्णानंद स्वामी वहाँ से निकल गए।

उसके पश्चात् श्रीहरि ने पीपल के नीचे बैठकर अपना मुंडन कराया। संतों-भक्तों के साथ 'डोली' तालाब में स्नान करके, संघ के साथ श्रीहरि जालमसिंह बापू के आग्रह से देवलिया पधारे।

जिस समय श्रीहरि महल में प्रवेश किए, उस समय केशाबाई चौक में गेहूँ फैला रही थीं। श्रीहरि ने पूछा : 'केशाबाई! क्या कर रही हो?'

'गेहूँ में कीड़े पड़ जाते हैं, इसलिए धूप में फैला रही हूँ।'

'जाओ, तुम्हारे अनाज में कभी कीड़े नहीं पड़ेंगे।' एकाएक श्रीहरि ने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया। यह सुनकर केशाबाई ने श्रद्धाभाव से पूछा, 'परन्तु, हे प्रभु! इससे मुझे क्या लाभ?'

श्रीहरि ने कहा, 'आपके महल में छोटा-बड़ा कोई भी जीव शरीर त्याग करेगा, तब हम उसे अक्षरधाम में ले जाएँगे।'

श्रीहरि का वह वरदान सुनकर केशाबाई और जालमसिंह बापू गद्गद होकर श्रीहरि के चरणों में गिर पड़े।

24. अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी की बातें

[1]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात करते हुए कहा कि -

'एक बार किसी व्यक्ति ने लाख रुपये खर्च करके बुद्धि खरीदी। उसी प्रकार अनेक प्रकार के मोक्ष की बुद्धि भी सत्पुरुषों से सीखी जाती है।'

एक राजकुमार की अपने राज्य के प्रधानपुत्र से घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों शिकार को निकले, लेकिन मीलों दूर पहुँच गए। शाम ढल चुकी थी।

दोनों पेड़ के नीचे सो गए।

सुबह राजकुमार को तीव्र भूख लगी और उसने प्रधानपुत्र को कहीं से भोजन खोजने भेजा। प्रधानपुत्र चल दिया और एक राज्य के किले के द्वार पर पहुँचा, जो कि थोड़ी देर के बाद खुला। प्रधानपुत्र ने शहर में कदम रखा ही था कि उसी क्षण उसकी वधाई की गई और उसी को नया राजा चुन लिया गया, क्योंकि उस राज्य का कोई वारिस नहीं था। राजा ने अपने को नि:सन्तान पाकर यही योजना बनाई थी।

इस ओर राजकुमार भूख से पीड़ित हो रहा था। प्रधानपुत्र बहुत देर के बाद भी नहीं आया तो राजकुमार उसी दिशा की ओर चल पड़ा। नगर में पहुँचा तो देखा कि पूरे नगर में भारी चहल-पहल है। क्योंकि नये राजा की सवारी जो निकलने वाली थी।

इसी शहर में एक दुकान पर राजकुमार ने अजीब सी सूचना लिखी हुई देखी : 'यहाँ बुद्धि बिकती है।' राजकुमार ने अपनी लाख रुपये की अँगूठी निकालकर बुद्धि खरीद की। दुकानदार ने एक पर्ची पर लिख दिया, 'अपने से छोटा भी हो और उसे बड़ी सत्ता मिल जाय, तो उसके आगे नम्रता से पेश आना चाहिए।' राजाकुमार चिठ्ठी लेकर चला।

कुछ ही क्षणों में नये राजा की सवारी नज़दीक आ गई और राजकुमार ने देखा कि 'यह तो मेरा मित्र है, प्रधानपुत्र! खाना लेने के बदले हाथी पर कैसे चढ़ गया?!' दो क्षण के लिए तो उसका खून खौल गया, लेकिन वह शिक्षा याद आई, जो दुकानदार से मिली थी।

उसने तुरन्त ही कुर्निश बजाकर-झुककर प्रधानपुत्र का अभिवादन किया। परिणाम यही निकला कि प्रधानपुत्र ने जाकर कुमार को बुलाया, 'इसी को राज्य करने का अधिकार है।' ऐसा कहकर अपने राजसिंहासन पर राजकुमार को आसीन किया।

उसी प्रकार से हमारा कल्याण हो, ऐसी बुद्धि भी सत्पुरुष से मिलती है। यदि हम बुद्धियोग प्राप्त करने के लिए सत्पुरुष का संग करें, तो जिस प्रकार से राजकुमार को राज्य मिला, उसी प्रकार से हमें भी अक्षरधाम मिलेगा।

[2]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात करते हुए कहा कि -

'करोड़ रुपये खर्च करने पर भी ऐसे साधु नहीं मिलेंगे, करोड़ों रुपये देने पर भी ये बातें नहीं मिलेंगी और करोड़ों रुपये देने पर भी यह मनुष्यदेह नहीं मिलेगी। हम सबने भी करोड़ों जन्म धारण किए हैं, परन्तु कभी भी ऐसा समय और ऐसा संयोग नहीं मिला, नहीं तो यह शरीर क्यों धारण करते?'

धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्य सहित भक्ति के सद्‌गुण जिस संत के पास हों, ऐसे संत का मिलना आजकल दुर्लभ है। ऐसे संत की बातें सुनना भी दुर्लभ हैं। उनकी बातों में हमारी अज्ञानता को मिटाने की शक्ति होती है। मनुष्यदेह भी दुर्लभ है। 84 लाख जन्मों के बाद मनुष्य-जन्म मिलता है।

एक अंधा व्यक्ति अपनी किसी गलती से राजा का गुनाहगार हो गया। अंधे को कौन सी सजा दी जाए, उसे विचार होने लगा। राजा ने उससे कहा, 'इस शहर के चारों ओर बारह कोस का किला है, उसमें से बाहर निकलने की केवल एक खिड़की है। तुम किले की दीवार पर हाथ रखकर चलते जाओ और जब खिड़की आए, तो बाहर निकल जाना।'

अंधे ने चलना शुरू किया, परन्तु ज्यों ही खिड़की के आने की

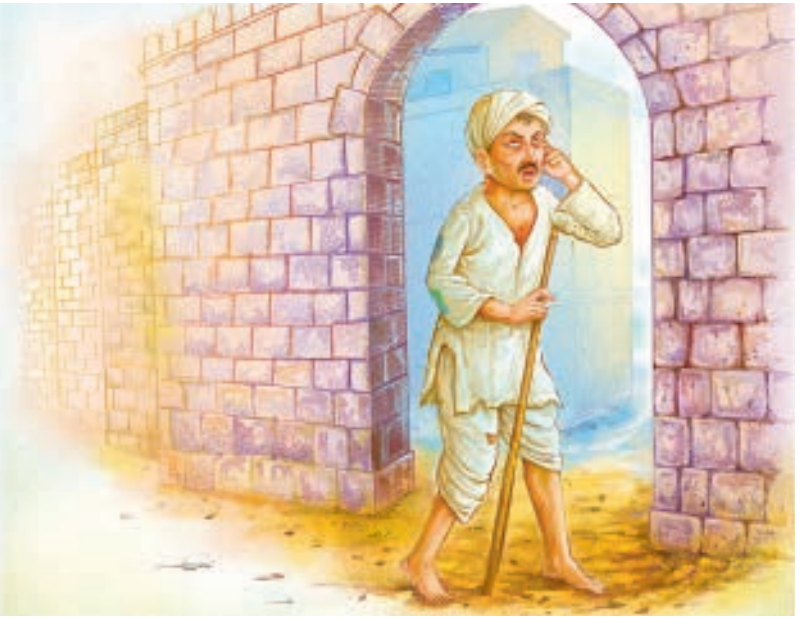

संभावना हुई कि उसके सिर पर खुजली आ गई। उसने दीवार से हाथ उठा लिया और चलते-चलते ही खुजलाने लगा। उतने में खिड़की निकल गई। उसके पश्चात् वह फिर बारह कोस का चक्कर लगाने लगा।

हमारी भी बिल्कुल ऐसी ही दशा है। इतनी दुर्लभ मनुष्य देह मिली है, उसमें भी गुणातीत संत की प्राप्ति हुई है। हम बड़े सौभाग्यशाली हैं, परन्तु उन्हें हमें पहचान लेना है और उनकी कथावार्ता सुनकर अपनी अज्ञानता निकाल देनी है।

[3]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात करते हुए कहा कि -

'सत्संग तो होता है, परन्तु संगत किए बिना सत्संग का आनन्द नहीं आता। जिस प्रकार से भोजन मिल जाए, परन्तु उसे खाए बिना उसका आनन्द नहीं मिलता, उसी प्रकार से वस्त्र-अलंकार मिले, किन्तु पहने बिना उसका आनन्द नहीं मिलता। ठीक उसी प्रकार से संग के बिना सत्संग का आनन्द नहीं मिलता।'

जो सत्संग ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं को भी दुर्लभ है, वह सत्संग हमें मिला है। उसका जितना ही लाभ हम ले सके, उतना ही आनन्द प्राप्त होगा। गंगा के किनारे खड़े रहकर भी यदि पानी न पीयें, तो प्यास नहीं बुझेगी। चंदन के वृक्ष पर सर्प लिपटे रहते हैं, लेकिन वे अपना मुँह वृक्ष से दूर रखते हैं, जिसके कारण उनका जहर समाप्त नहीं होता।

एक गाँव में एक वणिक रहता था। वह तेल बेचने का धंधा करता था। एक छोटी सी दुकान थी, जिसमें वह तेल बेचने में दिनभर उलझा रहता था। उसे एक क्षण भी अवकाश का समय नहीं मिलता था।

उसी दौरान एक महात्मा तप करने जा रहे थे। वे बनिये की दुकान पर आ पहुँचे। उनके पास एक पारसमणि थी। उन्होंने सोचा कि ये बेचारा पैसे-दो पैसे का तेल बेचने से कभी ग़रीब नहीं मिटेगा। अत: यह पारसमणि इसके घर पर रख दूँ।

महात्मा ने बनिये को कहा, 'यह पारसमणि है। लोहे से स्पर्श कराओगे, तो वह सोना बन जाएगा। इससे तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जाएगी। तुम इसे अपने पास रखो; वापस लौटते समय मैं इसे लेते जाऊँगा।'

वह बनिया अपने छोटे से व्यापार में बहुत ही व्यस्त था। जल्दबाजी में उसने महात्माजी से कह दिया, 'जो भी हो आप उस गोखे में रख दीजिए।'

महात्माजी गोखे में पारसमणि रखकर चले गए। उधर उस बनिये को एक पल के लिए भी अपने धंधे से फ़ुरसत न मिली।

छ: महीने बीत जाने के बाद महात्माजी वापस लौटे, तो उन्होंने सोचा कि वह बनिया अब तक तो सुखी हो गया होगा! लेकिन गाँव में आकर जब उन्होंने देखा, तो वह बनिया अपनी पुरानी ही हालत में धंधा कर रहा था। उन्होंने बनिये से जब पारसमणि को माँगा, तो उसने कहा, 'महाराज! जहाँ आपने रखी हो, वहाँ से ले लीजिए।'

यह सुनकर महात्माजी ने जब गोखे की तरफ़ देखा, तो पारसमणि पर धूल जम गई थी। वह बनिया पारसमणि की महिमा को समझ न सका।

महात्माजी ने उसे डाँटते हुए कहा, 'दो पैसे के व्यापार में तुम इतना व्यस्त हो गए कि पारसमणि को भूल गए? तुमने अभी पारसमणि का चमत्कार देखा ही नहीं!'

इतना कहते हुए महात्माजी ने उस बनिये से लोहा लाने के लिए कहा, लेकिन कंगाल बनिये की दुकान में लोहे का टुकड़ा भी नहीं था। किसी तरह से उसने इधर-उधर से कुछ लोहा इकट्ठा किया। महात्माजी ने पारसमणि को ज्यों ही लोहे से स्पर्श कराया कि वह सोना हो गया!

वह चमत्कार देखते ही बनिया नाचने-कूदने लगा। उसने महात्माजी से कहा, 'एक दिवस के लिए ही मणि दीजिए।'

'अरे मूर्ख! छः महीने तक तो मणि सौंपी; अब तुम्हारा नसीब जाने।' कहते हुए महात्माजी मणि लेकर चले गए।

हमारे लिए सत्संग ही पारसमणि है। सत्संग के मार्ग में आलस्य तथा प्रमाद विघ्न स्वरूप हैं। यदि हम मन, कर्म और वचन से सत्संग करें, तो स्वर्ण जैसे उत्तम बन सकते हैं।

[4]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात करते हुए कहा कि -

भगवान के कथनानुसार - 'मैं जितना सत्संग द्वारा वश में होता हूँ,

उतना तप, यज्ञ, योग, व्रत, दान आदि साधनों द्वारा नहीं होता।' वह सत्संग क्या है? सत्संग तो परम एकान्तिक सन्त को हाथ जोड़ना और वे जैसा कहें वैसा ही करना, वही है।

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध का श्लोक है। जिसमें कहा गया है कि इस लोक में सभी लोग भिन्न-भिन्न साधनों से कल्याण का मार्ग मानते हैं। कोई कठोर तप करके भगवान को प्रसन्न करना चाहता है, कोई अत्यधिक दान देता है, कोई अष्टांग योग की साधना करता है, परन्तु ये सभी साधन लम्बे समय के बाद कल्याण करते हैं। इन साधनों से भगवान को शीघ्र वश में नहीं किया जा सकता।

एक गाँव में दो भाई रहते थे। छोटे भाई को संतों का सत्संग बहुत अच्छा लगता था, जब कि बड़ा भाई यात्रा पर जाना अधिक पसन्द करता था। वह अपने छोटे भाई से यात्रा पर जाने के लिए प्राय: आग्रह करता था, परन्तु छोटा भाई इन्कार कर देता था।

एकबार छोटे भाई ने कहा, 'बड़े भाई साहब! यात्रा पर मैं तो नहीं जा सकता; मेरी ओर से मेरी इस तुंबड़ी को यात्रा करा दीजिए।'

बड़े भाई ने उस तुंबडी को हर जगह की यात्रा कराई। मंदिरों में पहुँचकर भगवान के चरणारविंद से तुंबड़ी का स्पर्श कराता था। पवित्र नदियों में तुंबड़ी को डुबकी लगाता था।

इस प्रकार यात्रा समाप्त करके बड़ा भाई वापस आया और छोटे भाई ने उसे भोजन का आमंत्रण दिया। भोजन करते समय तुंबड़ी में पानी भरकर पीने के लिए रखा। बड़े भाई ने ज्यों ही पानी का घूंट लिया कि तुरन्त ही उसने थूक दिया। उसने कहा, 'बहुत कडुआ पानी है!' खीर-पूड़ी खाया, फिर भी कड़वाहट मिटी नहीं। लगभग एक सप्ताह के बाद उसकी कड़वाहट दूर हुई।

छोटे भाई ने एक बार फिर बड़े भाई को भोजन के लिए आमंत्रित किया। इस बार भी उसने तुंबड़ी में पानी भरकर पीने को दिया। बड़े भाई ने कहा, 'अब मैं इस तुंबड़ी में पानी नहीं पीऊँगा।'

लेकिन छोटेभाई ने तुंबड़ी में से वही पानी पीया और बड़े भाई को भी पीने के लिए समझाया। बड़े भाई को पानी मीठा लगा, उसने कारण

पूछा। छोटे भाई ने कहा, 'इस तुंबडी को एक संत मिले थे। उन्होंने इसकी कड़वाहट निकालकर इसे स्वच्छ कर दिया है। उसी प्रकार से अपने अंतर की कड़वाहट काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रु यात्रा पर जाने से नहीं निकलते। ये सभी साधु के सत्संग से दूर होते हैं।'

इस उदाहरण से यह बात समझ में आई कि सत्पुरुष का संग ही सत्संग है। एकान्तिक संत के मिलने पर हमें अपनी चतुराई छोड़ देनी चाहिए। उनके दीन-अधीन होकर हमें निश्चय कर लेना चाहिए कि वे ही हमारे मोक्षदाता है; इसीलिए उन्हें हाथ जोड़ने के लिए कहा गया है। उसके पश्चात् वे जैसा कहें, उसी के अनुसार मन, कर्म, वचन से करना चाहिए।

औषधालय में दवाएँ तो बहुत होती हैं, यदि उन दवाओं को हम स्वयं ले लें, तो उसका परिणाम बुरा होता है। यदि कोई डॉक्टर लिखकर दे दे, तो रोग मिट जाता है। उसी प्रकार से जप, तप, व्रत आदि साधनों की अपेक्षा एकान्तिक संत की आज्ञा से यदि हम कोई मार्ग अपनाएँ, तो सांसारिक दु:ख मिट जाते हैं। अत: सत्पुरुष संत का मार्गदर्शन आवश्यक है।

[5]

स्वामिनारायण हरे! स्वामी ने बात करते हुए कहा कि -

'प्रह्लादजी ने बहुत दिनों तक नारायण के साथ युद्ध किया, परन्तु भगवान को जीत नहीं पाए। तब भगवान ने प्रह्लाद से कहा, 'इस प्रकार युद्ध करने से तो तुम मुझे जीत नहीं सकोगे। मुझे जीतने का उपाय यह है कि जिह्वा से मेरा भजन करो, मन में मेरा चिन्तन करो और आंखों में मेरी मूर्ति रखो, इस प्रकार निरन्तर हृदय में मेरी स्मृति करते रहो।' फिर प्रह्लादजी ने उसी रीति के अनुसार निरन्तर साधना की; तब छ: मास के अन्दर ही भगवान उनके वश में हो गए। अत: भगवान को प्रसन्न करने के लिए यही उपाय सर्वोपरि है, इसी उपाय को सीखना है।'

गुणातीतानंद स्वामी ने इस बात में युद्ध और उसके साधनों को कुछ अलग ही ढंग से बताया है। जिस प्रकार से यदि किसी योद्धा को जीतना हो, तो हमारे पास तलवार, ढाल, बंदूक आदि साधनों का होना आवश्यक है; लेकिन यदि किसी विद्वान को जीतना हो, तो ये सभी साधन व्यर्थ हो जाते हैं। विद्वान के सामने तो विद्वत्ता का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार

से शरीर में यदि जंतुओं से रोग हुआ हो, तो वे सभी जंतु दवा से मरते हैं, बंदूक से नहीं। उसी प्रकार से सर्व शक्तिमान और सबसे परे भगवान को हम लौकिक साधनों से नहीं जीत सकते।

रावण और कंस अत्यन्त ही बुद्धिमान और शूरवीर थे; फिर भी वे राम और कृष्ण को जीतने का उपाय नहीं खोज पाये और पराजित हो गए। राजा बलि असुर होते हुए भी भगवान को अपने वश में कर लिए थे।

गुणातीतानंद स्वामी ने यहाँ पर भगवान को वश में करने का उपाय बतलाया है। यदि हम अपनी सभी इन्द्रियों को भगवान में जोड़ दें, तो भगवान तुरन्त ही वश में हो जाते हैं। भगवान के एकान्तिक संत से ही यह उपाय हमें प्राप्त होता है। यद्यपि यह उपाय कठिन है, परन्तु लगातार अभ्यास करने से सिद्ध हो जाता है।

एक दिन गुणातीतानन्द स्वामी ने रामदास स्वामी को किसी काम से वंथली भेजा और कहा, 'रास्ते में 'स्वामिनारायण, स्वामिनारायण' मंत्र का भजन मन में लगातार करते रहना।'

इस प्रकार वे भजन करते हुए वंथली पहुँचे। जब वे वंथली पहुँचे, तो किले के एक-एक कण में श्रीहरि की मूर्ति का दर्शन हुआ। अत: हम सभी को यही उपाय सीखना चाहिए।

25. कीर्तन

स्नेह भरे नैन से निहारते हो, वंदन आनंद घनश्याम को;
अमीमय दृष्टि से निहारते हो, वंदन आनंद घनश्याम को... ०ध्रुव

छपियापुर में हरि आप प्रगट भए,
धर्म-भक्ति के घर आनंद-उत्सव भए,
संतों को आनंद उपजावते हो,
वंदन आनंद घनश्याम को...
स्नेहभरे नैन से. 1

बाल चरित्र किए बन में विचरण किया,
तीर्थों में जा जा कर सबको पावन किया,

नीलकंठ नाम को धारते हो,
वंदन आनंद घनश्याम को...
स्नेहभरे नैन से. 2

वल्कल वस्त्र धरे पुलहाश्रम में रहे,
ब्रह्मरूप तेज से सिद्ध जोगी भए,
निज स्वरूप समुझावते हो,
वंदन आनंद घनश्याम को...
स्नेहभरे नैन से. 3

लोज में प्रसिद्ध भये सहजानंद नाम से,
संतों को ज्ञान दिया सर्वोपरि धाम से,
मुक्तानंद प्रेम सेंति पूजते हो,
वंदन आनंद घनश्याम को...
स्नेहभरे नैन से. 4